: चतुर्थ अध्याय :

डॉ. नरेन्द्र कोहली के व्यंग्य साहित्य में सांस्कृतिक चेतना

चतुर्थ अध्याय

''डॉ. नरेन्द्र कोहली के व्यंग्य साहित्य में सांस्कृतिक चेतना ''

अनुक्रमणिका

४.० प्रस्तावना

४.१ व्यंग्य संस्कृति का संबंध

४.२ संस्कृति का अर्थ

४.३ सांस्कृतिक चेतना

४.४ भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

४.५ हिन्दी साहित्य में व्यंग्य सांस्कृतिक चेतना

निष्कर्ष

४.०. प्रस्तावना :–

राष्ट्र की जीवंतता का बोध उसकी संस्कृति से ही प्राप्त होता है। भारतीय नागरिक अपनी संस्कृति को प्राचीनता और गौरव – गरिमा के दर्प से मंडित रहे किन्तु आचरण में अपनी संस्कृति का गौरवगान इन दो बिन्दुओं के मध्य झूलते हुए व्यक्ति को, व्यंग्यकार डॉ. नरेन्द्र कोहली ने अपने दृष्टि–पथ में रखा है।

पाश्चात्य–संस्कृति के प्रति अनुराग, विदेशी वस्तुओं का लाभ, पाश्चात्य–सभ्यता के अंधानुकरण आदि बातों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। व्यंग्यकार ने दूसरों की वस्तु के प्रति आकर्षण आत्महीनता की मानसिकता आदि को भी लक्ष्य किया है। पाश्चात्य–सभ्यता के अंधानुकरण से, न तो हमारी मौलिकता ही सुरक्षित रही है न हम दूसरी संस्कृति के उदात्त तत्वों को आत्मसात कर पा रहे हैं। दोनों के सम्मिलन से गंगा – जमुनी संस्कृति के निर्माण के बजाय वर्ण – संकर – संस्कृति का उदय हुआ है।

भ्रष्टाचार, मानवीयता का ऱ्हास आदि के साथ हमारी संस्कृति के चिन्ह भी बिगड़ रहे हैं। इसका मुख्य कारण है पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव। हमारे सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है पर इसके बारे में कोई चिंतित नहीं है। कहाँ तो हमारी संस्कृति के अनुसार बड़ो का सम्मान होता था। एकत्र परिवार पद्धति थी। लेकिन आज बहुत – सी असंगत घटनाएँ इस सन्दर्भ में होती हुई दिखाई देती हैं। आज बेटा अपने जन्मदाताओं का, शिष्य अपने गुरूजनों का हमेशा अपमान करता हुआ दिखायी देता है। सास के साथ बहू का झगड़ा एक सामान्य दृश्य हो गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में बेटी को घर की लक्ष्मी माना जाता था लेकिन आज अलग घटनाएँ सुनने को मिलती हैं।

हमारी संस्कृति में पत्नी–पति की सेवा में अपना सौभाग्य मानती थी तथा पति–पत्नि को गृहस्वामिनी मानता था। मन मुटाव के बावजूद दोनों एक दूसरे का साथ दिया करते थे। लेकिन आज पति की सेवा तो दूर की बात रही उसका नाम नाम लेकर बुलाने में उसे गर्व का अनुभव होता है , किन्तु कई घरों में पत्नी को 'मनुष्य' का दर्जा तक नहीं दिया जाता।

संस्कृति के सन्दर्भ में गत दो दशकों में जो विसंगतियाँ पैदा हुईं उसके कई कारण हैं। धर्म का सच्चा अर्थ जानने का प्रयत्न किसी ओर से भी नहीं हुआ। विदेशी भाषा और संस्कृति से भारतीयों का मानस अत्याधिक प्रभावित होता रहा। विदेशी नागरिकता पाना आज यहाँ के सुशिक्षितों का ध्येय बन गया है। विदेशी भाषा, संस्कृति, वेशभूषा, रीति – पद्धति से आज भारत बहुत अधिक प्रभावित हो गया है। यहाँ तक कि विवाह के पश्चात बेटी विदेश जा रही है, यहाँ की सभ्यता, संस्कृति से दूर हो रही है इसका दुख आज उतना नहीं होता जितना कि इस बात से गर्व का अनुभव किया जाता है।

४.१. व्यंग्य और संस्कृति का संबंध :–

भारतीय संस्कृति अति प्राचीन एवं दुनिया को मार्गदर्शक रही है। समाज और संस्कृति का परस्पर संबंध चोली – दामन का होता है। भारत को अनेक वर्षों से विदेशी शासकों का काल तीव्र दबाव का काल रहा है। इसी के प्रतिक्रिया स्वरूप स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में जनता द्वारा आक्रोश की धारा फूट पड़ी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारतीय समाज और संस्कृति में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आये। कई विरोधी धाराएँ बहने लगी। एक धारा हिंदू समाज सुधारक कों की रही है। दूसरी धारा उग्र वादियों की रही है और तीसरी धारा अध्यात्म वादियों की रही है। इन सबके संगम से गांधीवाद का रूप बना, जिसमें आगे चलकर समाजवाद तथा आधुनिकतावाद की धाराएँ जुडी। किन्तु देश के स्वतंत्र होते ही जिन ध्येय और आदर्शों ने इन धाराओं को परस्पर टकराव से रोक रखा था वे निरर्थक हो गये।

एक समय ऐसा था भारतीय सभ्यता और संस्कृति का बोलबाला था। भारत कृषि उत्पादों से परिपूर्ण वैभवशाली देश था। भारत को सोने की चिड़ीया कहा जाता था, इसके अतिरिक्त भारत कला, संगीत, उद्योग तथा विद्या के क्षेत्रों में भी अग्रणी था। किन्तु आज के सांस्कृतिक परिवेश में एक विषम स्थिति उत्पन्न हो गई है। एक ओर प्राचीन संस्कृति की अवहेलना की जा रही है, उसे ध्येय माना जा रहा है। एवं दूसरी ओर संस्कृति के कोई नये मानदण्ड या रूप बन नही पा रहे है। परिणाम यह निकल रहा है कि, नयी एवं पुरानी

सांस्कृतिक मान्यताओं का परस्पर टकराव हो रहा है। आज का समाज अपनी संस्कृति भूलकर विदेशी संस्कृति के आचार- विचार, खान-पान, रहन-सहन, आदि को अपना रहा है। इसलिये पुरानी पीढियों एवं नयी पीढियों में विरोधाभास टकराहट, विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही है। व्यंग्य का सृजन भी उस समय होता है, जब विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही है। व्यंग्य का सृजन भी उस समय होता है, जब विसंगतियाँ पैदा होती है। तब व्यंग्यकारों की लेखनी से व्यंग्य का वैदग्ध्यपूर्ण तीखी अभिव्यक्ति होती है। इसलिए व्यंग्य और संस्कृति का संबंध जब से संस्कृतियों में विसंगतियाँ पैदा होती रही है, तबसे व्यंग्य और संस्कृति का संबंध आता रहा है, एवं आता रहेगा। व्यंग्य का काम ही विसंगतियों को उजागर करना है।

४.२. संस्कृति का अर्थ :-

'संस्कृति' मनुष्य को मानवता की ओर प्रेरित करनेवाले आदर्शों, आचार-विचारों और कार्य अनुष्ठानों की समष्टि का नाम है। अन्य जीवन व्यापी सत्यों के समान इस शब्द का भी आज अनेक विधी से प्रयोग हो रहा है। इतिहासवेत्ता दार्शनिक, धर्मविद, समाजशास्त्रीय और साहित्यिक अपने-अपने दृष्टिकोन के अनुसार संस्कृति के स्वरूप को ग्रहण करते है। इतिहासकार के लिए किसी देश का कलात्मक और बौद्धिक विकास संस्कृति है। दार्शनिक संस्कृति को जीवन का प्रकाश और सौंदर्य मानते है। धार्मिक दृष्टि से मनुष्य के लौकिक पारलौकिक सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचार-विचारों को संस्कृति कहा जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोन से संस्कृति सिखे हुए व्यवहार की वह समग्रता है, जिसमें मनुष्य का व्यक्तिमत्व पलता और पनपता है। इसी वैविध्य के अनुसार संस्कृति विषयक परिभाषाओं में पर्याप्त भेद और कहीं - कहीं विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

अतः संस्कृति का निश्चित स्वरूप निरूपित करने के लिए परिभाषाओं को देखना उचित होगा। अनेक विद्वानों ने संस्कृति की भिन्न- भिन्न परिभाषाएँ दी है, जो निम्नानुसार है।

संस्कृति शब्द के सम-स-कृति ये मुख्य पूर्वविभाग हैं। पाणिनीय व्याकरण के नियमानुसार सम् उपसर्ग के आगे रहनेवाले कृति कार आदि की अवस्था में सुर का आगम

हो जाता है। फलतः समकृति और समकार आदि विभाग संस्कृति संस्कार आदि शब्दों में परिणत हो जाते है। जिसके अर्थ, शुद्धि, सफाई, संस्कार, सुधार, मानसिक विकास, सजावट, सभ्यता होते हैं। शब्दार्थ की अपेक्षा इस शब्द का भावार्थ अधिक विशद और व्यापक है, क्योंकि इसमें परिमार्जन या परिष्कार के अतिरिक्त शिष्टता एवं सौजन्य के भावों का भी समावेश हो जाता है।

४.२.१. सर मोनियर विल्यम :–

संस्कृति की परिभाषा सर मोनियर विल्यम के 'ए' संस्कृत, इंग्लिश डिक्शनरी में इस प्रकार मिलती है, ''तैयार करना, रचना या कृति संस्कार द्वारा पवित्र करना संकल्प तथा प्रयत्न द्वारा कार्य की संपन्नता करना संस्कृति है।[१]'' इस प्रकार संस्कार करने की प्रक्रिया ही संस्कृति है।

शब्दार्थ की दृष्टि से संस्कार का अर्थ संक्षेप मैं संशोधन करना, उत्तम बनाना पवित्र तथा परिष्कार करना है। संस्कार की क्रिया द्वारा उत्तम या परिकृष्त रचना या कृति संस्कृत शब्द के अर्थ का द्योतत करती है।

४.३.२. हिंदी कोशकारों ने भी शब्दों को स्पष्ट किया है। हिंदी–विश्वकोश के अनुसार ''संस्कृति उस समुच्चय का नाम है। जिसमें ज्ञान–विश्वास, कला नीति–विधी, रीति–रिवाज का समावेश रहता है, जिसमें मनुष्य समाज को सदस्य के रूप में मानता हैं।''[२]

हिन्दी–विश्वकोश में ज्ञान – विश्वास, कला, नीतिविधी, रीति–रिवाज आदि को संस्कृति माना है और मनुष्य समाज को उसका एक भाग माना हैं।

४.२.३. हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार है, ''विभिन्न शास्त्रों, दर्शन आदि में होने वाले चिंतन, साहित्य, चित्रांकन आदि कलाओं एवं परिहत साधन आदि नैतिक आदर्शों तथा व्यापारों को संस्कृति कहा जाता है।''[३]

हिंदी साहित्य में विविध शास्त्रों में होने वाले चिंतन, चित्रांकन आदि कलाओं के साधन तथा आदर्शों को संस्कृति माना है।

४.२.४. रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति की परिभाषा रामधारी सिंह 'दिनकर' के 'संस्कृति के चार अध्याय' में इस प्रकार मिलती है, ''संस्कृति का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और इसकी नैतिक उन्नति है, एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार है और दूसरे को समझने की शक्ति है।''[४]

दिनकर ने दूसरों को समझने के साथ मनुष्य के मानसिक विकास एवं नैतिक उन्नति के साथ अच्छे व्यवहार को संस्कृति माना है।

४.२.५. राधाकृष्णन ने संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार से स्पष्ट की है, ''संस्कृति..... विवेक बुद्धि का जीवन को भले प्रकार जान लेने का नाम है।''[५]

राधाकृष्णन ने सतसत् विवेक बुद्धि से जीवन को अच्छी प्रकार से समझ लेना ही संस्कृति माना है।

४.२.६. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''संस्कृति की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।''[६] इस प्रकार विविध साधनाओं से संस्कृति को पूर्णता आती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि, संस्कृति मानव समाज की आन्तरिक उपलब्धियों की सूचक है। संस्कृति शब्द व्यक्ति की मानसिक तथा बौद्धिक गति विधियों, समाज के आचार–विचार, उन्नति–अवनति, रीति–रिवाज, धार्मिक – राजनैतिक एवं सामाजिक अवस्थाओं तथा परम्पराओं का परिचायक हैं।

४.३. सांस्कृतिक चेतना :

सांस्कृतिक चेतना हमारे जीवन को परिष्कृत सम्पन्न, उदार और सृजनशील बनाने का काम करती है, सांस्कृतिक चेतना का मुख्य कार्य मानवजीवन को उपयोगी क्रियाकलाओं के धरातल से ऊपर उठाकर चेतना या बोध की उस निरूपयोगी भूमिका में प्रतिष्ठित करना है, जहाँ सार्थकता का रूचिकार एवं आल्हादकारी उपभोग ही हमारा लक्ष्य

बन जाता है। सांस्कृतिक चेतना हमारे चेतनामूलक जीवन को विस्तार देने वाली तथा व्यक्तित्व को रोचक और गौरवशाली बनाने वाली है।

सांस्कृतिक चेतना वह तत्व है, जो हमारे चेतना मूलक जीवन एवं व्यक्तित्व को सुंदर, समृद्ध और सार्थक बनाता है। व्यक्तित्व के गौरव और उसकी भव्यता का आधार, प्रेम, सहयोग, करूणा, दया, सहानुभूति, साहस, निर्भीकता, कर्मण्यता, विनयशीलता, उदारता तथा कर्म एवँ वाणी सौन्दर्य आदि गुण संस्कृति चेतना में होते है।

संस्कारशील व्यक्ति इन्हें व्यवहार में लाने की सचेत कोशिश करता है। यह सचेत प्रयत्न दो स्तरों पर चलते है। एक तरफ अमानवीय, अनैतिकता का अस्वीकार एवं तिरस्कार दूसरी ओर मानवीय नैतिकता का स्वीकार एवं संस्तुति। इस प्रकार सांस्कृतिक चेतना व्यक्ति और जीवन को निरन्तर सम्पन्न और समृद्ध बनाती है।

सांस्कृतिक चेतना के संदर्भ में व्यंग्यकार ने लिखा है, ''परम्परा से चली आती हुई संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं, धार्मिक कटुताओं और विषमताओं को दूर करने तथा राष्ट्र में एकात्मता की भावना फैलाने के लिए संस्कृति के ऐसे–ऐसे आदर्श चरित्रों और घटनाओं को चित्रित करना; जो वर्तमान की अनेक विषय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सके उसे सांस्कृतिक चेतना कहा जा सकता है।''[७]

वैसे देखा जाय तो 'संस्कृति' और 'चेतना' अलग–अलग शब्दों से 'सांस्कृतिक चेतना' शब्द बना हुआ है, संस्कृति मनुष्य के आदर्शों, आचार, विचारों, कार्यो–अनुष्ठानों और जीवन के मूलभूत सत्यों को संस्कृति के रूप में जाना जाता है। 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग विचारक अनेक अर्थों में करते है। वस्तुतः 'संस्कृति' शब्द अपने आप में एक व्यापक अवधारणा को समाहित किया हुआ है।

४.३.१. संस्कृति के तत्व :

साधारण बोलचाल की भाषा में समूह के विश्वासों, आदर्शो, विचारों, व्यवहारों, रीति–रिवाजों आदि व्यवहार के अनेक उपकरणों तथा साधनों का संस्कृति कहा जाता है।

यहाँ यह विचारणीय है कि, आखिर संस्कृति की अन्तर्वस्तु क्या है? इस संबंध में अनेक विव्दानों ने अपने विचार प्रकट किए है।

'अलैग्जैण्डर ए. गोल्डन वाइजर' ने संस्कृति के तत्वों में निम्नलिखित तत्वों को माना है – ''हमारी प्रवृत्तियाँ, विश्वास और विचार, हमारे निर्णय और मूल्य, हमारी संस्थाएँ (राजनैतिक और कानूनी, धार्मिक और आर्थिक) हमारी नैतिक संहिताएँ और शिष्टाचार के नियम, हमारी पुस्तकें और मशीनें, हमारे विज्ञान, दर्शन और दार्शनिक ये सब और दूसरी बहुत सी चीजें तथा प्राणि स्वयं भी और अपने विविध संबंधो में भी।''[८] जिसमें समाविष्ठ है, वे संस्कृति के द्योतक है। संस्कृति इन्ही पर आधारित होती है।

अलैग्जण्डर ने संस्कृति तत्वों में प्रवृत्तियाँ, विश्वास, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक संहिताएँ, ज्ञान, विज्ञान आदि विविध संबंधो को संस्कृति माना है।

ए.डब्ल्यू ग्रीन के मतानुसार संस्कृति क्या है? तो ''संस्कृति ज्ञान, व्यवहार की उन आदर्श पद्धतियों को तथा ज्ञान और व्यवहार से उत्पन्न हुए साधनों की व्यवस्था को कहते हैं, जो सामाजिक रूप से दूसरी पीढी को दी जाती है।''[९]

ग्रीनने संस्कृति को ज्ञान, व्यवहार, विकास, आदि को सामाजिक रूप से एक पीढी से दूसरी पीढी को देना संस्कृति माना। उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट होता है कि, सभी ने अपने–अपने ढंग से संस्कृति के संबंध में विचार प्रकट किए हैं। अर्थात कहा जा सकता है कि, संस्कृति शब्द विभिन्न उपादानों से मिलकर बना हुआ है। संस्कृति के अनेक अंग या पक्ष होते हैं, जिनसे संस्कृति का निर्माण होता है।

४.४. भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ :

भारतीय संस्कृति हिंदू संस्कृति है, या यूँ कहें कि वैदिक संस्कृति है जो मूलतः सिन्धु संस्कृति है। इस पर अनेक संस्कृतियों के आघात प्रघात हुए। अनेक आघातों एवं प्रत्याघातों सहन करने के पश्चात भी भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषताएँ ज्यों की त्यों है। इस पर अनेक संस्कृतियों का प्रभाव भी पड़ा है। इसका समन्वयक रूप उपेक्षणीय नहीं है, फिर भी मूल आत्मा तो भारतीय ही है।

भारतीय संस्कृति के ऊपर अनेक आघात हुए, फिर भी यह संस्कृति अपने मूल रूप में अवश्यमेव विद्यमान रही है। अनेक विव्दानों ने इस पर विचार व्यक्त किये है, मुख्य रूप से देखा गया तो भारतीय संस्कृति में निम्न लिखित विशेषताएँ विद्यमान हैं।

४.४.१. अमरता :

यह संस्कृति देश के उत्थान–पतन, उसकी आंतरिक उथल–पुथल, विदेशियों के प्रबल आक्रमण, विभिन्न राजनीतिक एवं पराजय क्रांतियों के मार्ग से प्रभावित रहने पर भी अपने मूलरूप में विद्यमान है। भारत देश में बाहर से अनेक जातियाँ आयी तथा सबसे इस देश के ऊपर अपना – अपना प्रभाव छोड़ा है और वे सभी जातियाँ भारत देश की संस्कृति से प्रभावित रही है। इतने आघातों के पश्चात् भी भारतीय संस्कृति अविकल रूप में तथा अपने मूल रूप में ज्यों की त्यों रही है। उसमें परिवर्तन भी आया तो वह परिवर्तन नहीं रहा, वह उसका एक अंग बन गया है। अपने मूल तत्व को न छोडना इसमें ही उसकी अमरता दृष्टि गत होती है।

४.४.२. सार्वजनिकता :

भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का योग होने से सबके द्वारा प्रशंसनीय है। इस संस्कृति को आसानी से ग्रहण किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति में वैदिक कालीन संस्कृति, रामायण कालीन संस्कृति, महाभारत कालीन संस्कृति, बौद्धकालीन संस्कृति, जैन कालीन संस्कृति, मुगलकालीन संस्कृति, अंग्रेज कालीन संस्कृति आदि का योग है। भारतीय संस्कृति ने इन सभी को अपनाया है। इन सभी को अपनाने से ही वह सबके द्वारा प्रशासनीय है। इसलिए भारतीय संस्कृति को आसानी से ग्रहण किया जा सकता है।

४.४.३. सर्वांगीनता :

भारतीय संस्कृति का निर्माण करने में सभी वर्गों और आश्रमों के लोागों का योगदान रहा है। इसमें जीवन के चारों वर्गों, धर्म–अर्थ, काम और मोक्ष का सफल समन्वय है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में आशावादिता दृष्टिगत होती है। अनेक संस्कृतियों एवं जातियों के

मिलन से भारतीय संस्कृति में जो एक विश्वसनीयता उत्पन्न हुई है, वह संसार के लिए सचमुच वरदान है। पिछले अनेक वर्षोंसे पूरा संसार भारतीय संस्कृति का प्रशंसक रहा है।

४.४.४. आध्यात्मिकताः

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक रही है। आत्मा के द्वारा परमात्मा का आनंद प्राप्त करना अध्यात्मिकता का लक्ष्य होता है। ऐसे अध्यात्म परायण लोंगो के सामने राजा भी नतमस्तक होता था। मोक्ष की प्राप्ति हो जाने पर सांसारिक व्याधियों से मुक्ति मिल जाती है। इस संसार में पुनः आकर जीवन को भोगना नहीं पड़ता है। सम्पूर्ण जीवनभर अपनी शक्ति एवं ज्ञान का सदुपयोग करते हुए मानव मोक्ष को कैसे प्राप्त करता है, यह भारतीय सांस्कृति का आध्यात्मिक पक्ष है। क्योंकि मोक्ष मानव का अंतिम लक्ष्य है।

४.४.५. धर्मप्रधानता :

'धर्म' शब्द का अर्थ 'धृ' धातू से बना है और इसका शाब्दिक अर्थ है, वह जो किसी को धारण करे अतः प्रत्येक वस्तु, मनुष्य और समाज जिन नियमों पर आधारित कर्म करते है, उनको धर्म कहा जा सकता है। साधारणतः धर्म – पालन का अर्थ कर्तव्य पालन माना जाता है। भारत में भौतिक और माध्यमिक दोनों पक्षों का सुन्दर मेल किया गया है। इस मेल को मिलानेवाला धर्म हैं।

४.४.६. प्राचीनता :

इस संस्कृति के कई विशिष्ट एवं प्रमुख अंगो का विकास – ई.सा.से कई शताब्दी पूर्व हो गया था। दूसरे देशों में जब बर्बरता व्याप्त थी, उस समय इस देश में संस्कृति प्रखर रूप में व्याप्त थी। इराक की सबसे पुरानी जाति पर वैदिक सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव है। वैसे तो मिश्र, यूनान और बेबीलेन की सभ्यताओं को प्राचीन मानते हैं, परंतु वैदिक सभ्यता उससे भी प्राचीन है। इस प्रकार की भारतीय संस्कृति प्राचीनतम रूप में विद्यमान है।

४.४.७. सर्व व्यापकता :

भारतीय संस्कृति ने भारत में ही नहीं बल्कि कारस, चीन, साईबेरिया क्षेत्र से लावा और बोर्नियों के द्वीपों तक और प्रशांत सागरीय द्वीपों तक अपने विश्वासों, कथाओं आदि का प्रसर एवं प्रसार किया है। संस्कृति का एक दूसरे के ऊपर बहुत असर पड़ता है। परिणाम स्वरूप भारतीय संस्कृति का चीन, तिब्बत, लंका, जपान, बर्मा, नेपाल, यूरोप आदि स्थानों में प्रभाव पड़ा हुआ है।

४.४.८. त्याग :

मानव जीवन की सफलता त्याग के द्वारा हो सकती है, भोग के द्वारा नहीं। पाश्यात्य संस्कृति की तरह भोग का उपदेश न देकर योग का उपदेश भारतीय संस्कृति देती है। त्याग एक महामंत्र है। गीता में निस्वार्थ कर्म का विधान है। त्याग से ही सभी सुखी रह सकते है। इसलिए आज भी समस्त विश्व में योग साधना का प्रभाव भारतीय संस्कृति के कारण ही है।

४.४.९. तपोवन :

भारतीय संस्कृति में तपोवन का स्थान इसलिए अधिक है क्योंकि जन–कोलहल से दूर शान्त एवं रमणीय स्थान आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं। यह भारतीय संस्कृति की अपनी विशेष विशेषता है। कोलाहल से दूर रहकर शांत एवं रमणीय स्थान में ही गौतम बुद्ध को आत्मिक उन्नति एवं ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इसलिए तपोवन का होना जरूरी है।

४.४.१०. चिंतन की स्वतंत्रता :

चिंतन की स्वतंत्रा के कारण देश में श्रुति, स्मृति, बौद्ध–दर्शन, चार्वाक –दर्शन, अद्वैत–दर्शन, विशिष्ट–द्वैत–दर्शन शुद्ध द्वैत–दर्शन, द्वैता–दर्शन आदि कितने दर्शनों एवं मत–मतांतरो का जन्म हुआ। भारत के प्रत्येक नर–नारी को चिंतन का अधिकार प्राप्त हुआ और मनमुटाव का परित्याग कर आत्म विश्वास मे लीनता की भावना आई। स्वतंत्रता

मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है, हमारे मनुष्य इसे भली–भाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति में इसका विधान किया है।

४.४.११. परलोक तथा पुनर्जन्म में विश्वास :

भारतीय संस्कृति की इस विशेषता के फलस्वरूप बहुत से लोगों ने गलत काम करने से अपने को रोका है। किसी भी व्यक्ति के ऊपर नियंत्रण के अभाव होने पर वह उच्छृंखल हो जाता है। इसलिए यह परलोक तथा पुनर्जन्म की भावना लोगों को उचित मार्ग की ओर उत्प्रेरित करती है। परलोक तथा पुनर्जन्म में विश्वास के फलस्वरूप बहुत लोगों ने गलत काम करने से अपने को रोका है। यह भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है।

४.४.१२. आश्रम व्यवस्था :

भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था की स्थापना की गई है। मनुष्य की आयु को १०० वर्ष मानकर उसे चार भागों में विभक्त किया गया है। पच्चीस वर्ष तक की अवस्था को ब्रम्हचर्य, पचास वर्ष तक की अवस्था 'गृहस्थ' पचहत्तर वर्ष तक की अवस्था को 'वानप्रस्थ' और ७४ से १०० तक सन्यास के अंतर्गत रखा गया है। इस प्रकार ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, और शुद्र वर्गों में सामाजिक कर्मों को विभक्त करके अपनी रूचि के अनुसार अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर जन–समुदाय को प्रदान किया गया है।

४.४.१३. समन्वयवादिता :

भारतीय संस्कृति सभी संस्कृतियों का समन्वय रूप प्रस्तुत करती है। भारतीय संस्कृति की पचन शक्ति बड़ी प्रबल है। इसने सबको अपने में पचा लिया है। वेद का पवित्र उद्देश्य है कि, हे मानव! तुम दूसरे मानवों के साथ मिलकर चलो। तुम्हारा भाषण, तुम्हारा मनन और चितन मिलकर ही दूसरों की भावनाओं के साथ अपनी भावनाओं को मिलाते हुए तुम संसार के अनेक पदार्थों का उपभोग करों। इस में सभी धर्म या सभी जाति का समानता से आदर किया गया है।

४.४.१४. देवपाराणता :

यहाँ के लोग अपने से अलग ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते रहे है। धर्म का सच्चा रूप ईश्वर को किसी रूप में भी मानने को तयार है। भारतीय धारणा के अनुसार ब्रम्ह (सर्व देवमयम) सर्वोच्च सत्य है। जिस ब्रम्हा से मनुष्य उत्पन्न हुआ है उसी में उसे लय होना है। भारतीय महामानवों ने इसी सत्य को और 'वसुदेव कुटुम्बकम्' के रूप में स्वीकार किया है; और 'वसुदेव कुटुम्बकम्' की यह धारणा इसी देव परायणता के बलपर पनपी और प्रबल हुई है।

४.४.१५. सहिष्णुता :

इसी गुण के कारण यह संस्कृति अब तक जीवित है। ऋगवेद में एक सद् विप्रा बहुधा 'वदान्ति' का वर्णन किया गया है। गीता में श्री कृष्ण ने भी इस पर जोर दिया है। जैन–धर्म तथा बौद्ध धर्म भी इस सिद्धान्त को मानते है। सम्राट अशोक अपने 'द्वादश शिला–अभिलेख' में इसे सुगम और सुन्दर रूप में लोंगों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। भारत के ही नहीं बल्कि विदेश के भी विवादग्रस्त लोग भारत में शरण लेते रहें है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति अनेक विशेषताओं से युक्त है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के मूल में 'वेद', उपनिषद है और वेद के 'शब्द' विश्व के प्रथम शब्द है। भारतीय संस्कृति स्वयं में सभी संस्कृतियों से अपूर्व है। इसलिए विश्व में प्रभावित अवश्य रहीं है।

इससे यह सिद्ध होता है की भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों पर हावी रही है। यह सही है कि अन्य संस्कृति का इस पर प्रभाव पड़ा है, परंतु उनका प्रभाव इस प्रकार का नहीं रहा जिससे भारतीय संस्कृति का रूप पूर्णतः बदल जाय या विकृत हो जाय। इसी को यह कहे कि भारतीय संस्कृति की पाचन–शक्ति अत्याधिक बलवती रही है। जहाँ अन्य संस्कृतियाँ आकर और प्रभाव डालकर भी उसी में समाहित हो गई है। यही भारतीय संस्कृति का मूल रहा है।

४.५. हिंन्दी साहित्य में व्यंग सांस्कृतिक चेतना :

भारत वर्ष अपनी महान सांस्कृतिक परंपरा के लिए विश्व में जाना जाता है। लेकिन विज्ञान युग में विभिन्न माध्यमों द्वारा आक्रमण हो रहा है। इसके कारण संसार में आदर्शवत् मानी जानेवाली भारतीय संस्कृति धीरे–धीरे विसंगत होती जा रही है। इसे देखते हुए हिन्दी व्यंग्य साहित्य में सभी प्रकार की समकालीन विसंगतियों को अपनी लेखनीसे चित्रित किया है। भिन्न–भिन्न देशों के लोग आपस में मिल जुलकर विचार, वस्तु, भाषा आदि का अदान–प्रदान करते है। इसमें सांस्कृतिक लेन–देन भी होती है। इस लेन–देन का परिणाम भारतीय संस्कृतियों पर भी होता जा रहा है। पाश्चात्यों के अनुकरण के कारण हमारी संस्कृति में बहुत परिर्वतन हुआ है।

भारतीय संस्कृति की स्तुति प्रशंसा अनेक विद्वान करते है। लेकिन हम अपनी संस्कृति को बिगाडते जा रहे है। यहाँ के संस्कृति में रहन–सहन, रीति–रिवाज, विदेशी नकल, परदेशी बोली, नारी का धर्म, फिल्मी अनुकरण, देश की दुर्दशा, यंत्रयुग की संस्कृति, काफी हाऊस, रेस्टोरंट, क्लब, बार आदि में घुमनेवाली नई पीढी की संस्कृति, फैशन आदि सभी क्षेत्रों में परिवर्तन होने लगा है। यह परिवर्तन संस्कृति के कारण है। भारतीय संस्कृति पर पाश्चिमात्य संस्कृति का अनेक माध्यमों के द्वारा आक्रमण हो रहा है, इसके कारण आदर्शवत मानी जानेवाली भारतीय संस्कृति धीरे–धीरे विसंगत होती जा रही है। इसी को निबंधकारो ने अपनी–अपनी दृष्टियों से देखा है, परखा है। अतःकतिपय विसंगतियों को उजागर किया है।

पाश्चिमात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण तो हमारी संस्कृति ऱ्हास की ओर बढती जा रही है। इसके साथ–साथ अन्य भी कुछ कारण है जिससे भारतीय संस्कृति ऱ्हासोन्मुख हो रही है। आज–कल की परिस्थितियाँ, परिवेश, बदलती मानसिकता इस प्रकार की कुछ बातें भी व्यंगकारों के ऱ्हास के लिए परिणामकारक दिखती है। इन सभी बातों पर व्यंग्यकार की दृष्टि गयी है और उन्होंने अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से इन बातों पर कटु प्रहार किये है। इन बातों पर कटु प्रहार करना, उनपर व्यंग्य करना या उन्हें पाठकों के सामने

लाना इसके पीछे इन साहित्यकार का एक मात्र उद्देश्य है कि, वे ऱ्हासोन्मुख हो रही हमारी संस्कृति को बचाना चाहते है। व्यंग्यकार का यह प्रयत्न सांस्कृतिक चेतना जगाने का प्रयत्न है। व्यंगकार के द्वारा किये गये इस प्रयत्न को निम्न दृष्टि से देखा गया है।

४.५.१. पाश्चिमात्य संस्कृति का प्रभाव :

विदेशियों के आगमन के साथ–साथ विदेशी संस्कृति देश में आ गयी। हम भारतीय लोग अपना सब कुछ भूलते जा रहे है और उनका अनुकरण करते रहे है। भारतीयों की ओर से पाश्चात्यों का किया जानेवाला अनुकरण अंधानुकरण है – पेहराव, वेशभूषा, खान–पान, तीज त्योहार, फैशन, आचार–विचार आजादी के पश्चात विराट–विश्व के साथ भारत के संबंधो ने भारतीय नागरिकों के लिए विदेश–भ्रमण से अधिक अवसर प्रदान की। मंत्री, प्रतिनिधि मण्डल, खिलाड़ी सांस्कृतिक आदान–प्रदान और उच्चाधिकारियों के प्रशिक्षण–भ्रमण्य, शासकीय दौरों द्वारा भारतीयों को प्रवास के अधिक अवसर मिले। अपने दायरों से बाहर निकलकर उन्मुक्त आकाश तले भारतीय व्यक्ति ने पाश्चात्य जगत् की विलासितापूर्ण तड़क–भड़क को देखा तो उसने उसे अपनी किस सीमा तक ग्रहण किया, वह तो नहीं कहा जा सकता, किंतु ढेर सारी बुराइयों से समाज और राष्ट्र भर गया है। तीर्थ यात्रा से लौटनेवाले व्यक्ति का स्वागत मध्य कालीन धर्म धारणा वाले समाज के द्वारा जैसे किया जाता था, वैसा ही स्वागत आज विदेश से लौटनेवाले व्यक्ति का किया जाने लगा है। आज के भारतीयों की यह मानसिकता है।

इसका परिणाम यह हुआ की गांधीजी ने विदेशी – वस्तुओं के बहिष्कार द्वारा भारतीयता के प्रति की जो भावना जगाई थी, वह समाप्त हो गई। 'मेड इन इण्डिया' वस्तुओं का पिछड़ेपन का प्रतीक माना जाने लगा। इसके बारें में डॉ. नरेंन्द्र कोहलीजीं ने 'अमेरिकन जांघिया' नामक रचना के माथुर साहब अपने जांघिए के प्रदर्शन के लिए नंगे तक होने में संकोच नहीं करते, इस पर करारी चोट की है इस बारें में व्यंग्य करते हुऐ व्यंग्यकार लिखते है, ''वह लंगूर की तरह लाल जांघिए का प्रदर्शन करते फिरते है – उन्होंने अपने लाल जांघिऐ को बड़े प्यास से सहलाया और कहा हमारी एम्बैसी के मिस्टर

किथकिन अमरीका लौट रहे थे। उन्होंने अपनी चीजों की निलामी की उसी में से लिया।''[१०] इस प्रकार आज प्रदर्शन करने हेतु आदमी कोई भी तरिका इस्तेमाल कर सकता है। इस बात पर व्यंग्य किया है।

पेहराव के साथ खानपान आदि दैनिक व्यवहार की वस्तुओं में भी विदेशी–वस्तुओं के पागलपन का दौर इस पर व्यंग्यकार ने व्यंग्य किया है। वे लिखते है ''गेहूँ है तो अमरीका से रेडिमेड चला आ रहा है। आदत नहीं पड़ गई रेडिमेड चीजों की तो और क्या? भिखमंगे कहीं के।''[११] इस प्रकार आज कल सभी रेडिमेड वस्तुएँ खरिदने में विश्वास रखते है।

पागलपन की सीमा तक पहुँचे हुए इस घिनोंने रूप को व्यंग्यकारों ने दिखाया है। इम्पोर्टेड होने के कारण दूसरे की उतरन, वह भी जाँघिया तक पहनने से हम नहीं हिचकिचाते और इससे हम अपनी वेशभूषा को भूलते जा रहे है।

हमारी मानसिकता गुलामी की बनायी गयी है और हमने इसे त्याग भी नहीं है इस मानसिकता पर भी व्यंग्य करते हुए व्यंग्यकार ने लिखा है, ''हिंदी का सबसे अच्छा शब्दकोश भी एक विदेशी कामिल बुल्के ने बनाया है।''[१२] इस प्रकार गुलामी की मानसिकता और विदेशी आकर्षण के बारें में व्यंग्य किया है। जिसमें पाश्चिमात्य संस्कृति पर व्यंग्य द्वारा क्षोभ प्रकट किया है। हमारी परम्परागत वेशभूषा वातावरण के अनुसार बनायी गयी है इसमें हमारी संस्कृति झलकती है परंतु पाश्चात्य अंधानुकरण से हम इसे भी भूल रहे है। ऊपर से खादी पहनते और नीचे टेरीलीन की लाल रंग की चड्डी इस पर व्यंग्यकार ने 'गरम हवा और भैया' में किया हुआ व्यंग्य अत्यंत मार्मिक है। मैने पूछा; ''मित्र, यह तो विशुद्ध विसंगति है। खादी के कपडों के नीचे टेरीलीन की चड्डी ! मैं एक भारतीय मर्द हूँ। मुझे संस्कृति प्यारी है। यदि तुम्हारे साथ रिक्षा में बैठूंगा तो लोग मेरी संस्कृति और सभ्यता पर कीचड़ उछालेंगे।''

उसने कहा – ''गरमी के दिनों हर समझदार आदमी संस्कृति भूल कर ठंडी बीयर पीने लगता है, मेरे साथ चलोंगे तो मजे में रहोंगे।''

मैंने कहा – ''मैं एक लेखक के साथ –साथ मास्टर भी हूँ और देश के तमाम मास्टरों ने ही तो संस्कृति को जीवित रखने का ठेका ले रखा है।''[१३]

आज की नयी पीढि एवं आदर्शवत् तत्वों को मानने वाले लोगों की टकराहट पर घोंघीजी ने किया हुआ व्यंग्य मार्मिक है।

भारतीय पुरूष ने देशी संस्कृति के साथ कैसा बर्ताव किया है, पाश्चात्यों का अनुकरण कैसा किया है इस पर व्यंग्यकार ने 'पाधेय' में लिखा है कि '' पाश्चात्य कपडे पहनता है, पश्चिमी देशों के समान अर्थ के पीछें अपना दीन–इमान खो बैठा है। इस देश का पुरूष क्या है? कूपमंडूक ! अपनी पत्नी और परिवार के हितों के खूंटे से बँधा रहट का बैल! स्वार्थी ! नीच! देश को लूटकर अपने परिवार का पेट भरनेवाला। न उदार दृष्टि न उन्मुक्त चिंतन पुरूष क्या सोचेगा देश के लिए।''[१४] भारतीय पुरूष अपनी संस्कृति के साथ त्याज्य बर्ताव करता है एवं पाश्चिमात्य संस्कृति को आदर्शवत मानता है, जो देश हित के लिए कुछ भी नहीं कर सकता इस स्थिति पर व्यंग्य किया है।

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय संस्कृति कैसे बिगड़ती जा रही है, इसे व्यंग्यकार ने 'पहिलौ सुख जाके भले पड़ोसी' में व्यक्त किया – ''घरों मे शौचत्याग करने वालों को सुरमय और सुसंस्कृत नागरिक माना जाले लगा। माता – पिता की शादी में औलाद जाने लगी। बड़े –बड़े रईस स्वयं शेव बनाने और जूतों पर पॉलीश करने लगे। पहले गुरू शिष्यों को पाठ पढाते आज छात्र अध्यापक को सबक सिखाता है। पहले वर – पक्ष के गुण बखाने जाते थे और कन्या किसी के गले में फंदा 'जयमाला' डाल देती थी। आज कन्या पक्ष के गुण गाये जाते है और बर किसी की गर्दन पर हाथ रख देता है।''[१५] इस प्रकार आज के लोगों की मानसिकता पर विचार किया है।

पराधीनता के पश्चात हम स्वाधीन हुए। स्वाधीनता संग्राम के दौरान हमने स्वस्थ और युगानुरूप आदर्श समाज का चित्र के फलक पर बनाया था। आजादी के पश्चात् उस पर कुंठा की काली स्याही गिर गयी। नीतिहीन राजनीति और न्यायहीन न्यायव्यवस्था ने समाज में पाखण्ड, छल, स्वार्थ और नैतिकता रूपी मूल्यों को उगाया है। आजादी के

पश्चात का समाज उच्छृंखल और खोखला हो गया है। सामान्य मध्यवर्गीय मनुष्य के लिए सम्मापूर्ण जीवन सपना बन गया है।

पाश्चात्य की सत्ता के साथ–साथ पश्चिम का दर्शन भी हमारे यहाँ के शिक्षितों के ऊपर हावी हो गया है। जैसे कार्ल मार्क्स, फ्रायड, डी.एच. लॉरेन्स, और फ्रेजर के विचारों ने शिक्षित युवा पीढी का वैचारिक मानस कब्जे मे कर लिया है। स्वतंत्रता का अर्थ अराजकता – उच्छृंखलता बन गया है। वह किसी प्रकार के बंधन में (कमिटमेंट) समर्पित होना नहीं चाहता। अपने यहाँ के ज्ञान को वह तुच्छ हीन समझता है। इस संदर्भ में यह बात बेबाक सिद्ध होती है – ''उनको अपने देश और समाज के प्रति गहरी विरक्ति की भावना किसी प्रकार के दायित्व से पूरी मुक्ति की कामना आत्मरति, भोगवृति में गहरी आसक्ति एक प्रकार से व्यापक वर्ग खाली यानी खालिस (शुद्ध) जीने की माँग करता है वह किसी सामाजिक, राष्ट्रीय या मानसिक मूल्य दायित्व के चक्कर में नहीं पड़ना चाहता।''[१६] इस प्रकार देश प्रेम कम होता हुआ नजर आ रहा है।

पाश्चिमात्य संस्कृति के कारण भारत में स्वतंत्रता का अर्थ फ्री सेक्स किया गया है। जिसके कारण स्त्रिया भोग का साधन मात्र रह गयी है। उनको भी भोग का अधिकार मिल गया है। अवैध यौन संबंध इसकी परिणति है। व्यंग्यकार अपनी रचना में इस पर प्रहार करते हुए बच्चे के मुँह से कहलवाते है कि – ''मम्मी तुम अपने बॉयफ्रेंड से डैडी की गर्लफ्रेंड को क्यों नहीं पिटवाती।''[१७] इस प्रकार पति–पत्नि के रिश्ते में तीसरे ने स्थान पा लिया है।

आज भारतीय विदेश से बहुत अधिक प्रभावित है इस बात को व्यंग्यकार प्रकार व्यक्त करते है – ''क्किट इंडिया को बड़ी तड़प है, आज हिंदुस्तानियों में, तमाम डाक्टर, इंजिनियर, गणितज्ञ, अर्थशास्त्री, रसायनशास्त्री, भौतिकशास्त्री आदि क्किट इंडिया किये चले जा रहे है।''[१८] इस प्रकार सभी अपने कामों से भटक रहे है।

क्किट इंडिया यह ब्रिटिश शासन को यहाँ से भगाने के लिये प्रयुक्त शब्द था किंतु विसंगति देखिये कि भारतीय ही, विशेषकर, सुशिक्षित भारतीय भारत छोड़ विदेश जा बसने के लिये आतुर है।

अपने देश की संस्कृति पर विदेशी संस्कृति का प्रभाव बढता जा रहा है। इससे चतुर्वेदीजी के मन को बड़ी वेदना होती है। अपनी चिंता को वे इस तरह व्यक्त करते है – ''इधर से संस्कृति जाती है और उधर से आधुनिक तकनीक आती है। दिक्कत है कि संस्कृति कही जाते गाते गाते चल ही न बसे। ''[१९] इस प्रकार आधुनिकता के कारण संस्कृति का टिकना संदेहास्पद है।

पाश्चिमात्य संस्कृतिका प्रभाव इतना दिखाई देता है कि, भारत के स्वतंत्र होने के साठ वर्ष पश्चात भी विदेश से वापस लौटकर आए भारतीय स्वयं को न जाने क्या समझने लगते है। विदेश – से लौटकर वहाँ की तरीकों के पुल बाँधना तथा भारतीय वस्तुओं, संस्कृति को हेय दृष्टि से देखना विदेश से लौटे भारतीयों की सभ्यता बन गई हैं। विदेशी भाषा और विदेशी संस्कृति ने भारतीयों में मानसिक दासता कूट–कूट कर भर दिया है। विदेशियों ने सहायता दे–देकर देश को इतना असहाय बना दिया है कि, उनकी अनुचित माँगों, अभ्रद एवं अन्यायपूर्ण नीतियों को चुपचाप अनदेखा करना पड़ता है। 'चावल से हीरे तक' में इर पर कटु आक्षेप करते हुए कहते है, ''वैसे तो चौकीदार वर्दी पहनकर, बंदूक लेकर अकडा खड़ा रहता है, पर अमरिका और अंग्रेज चोरी करने आतें है, तो वह पान खाने च३ला जाता है। व्यंग्यकार कटाक्ष करते हुए कहते है कि वैसे तो हमारा ईमान और आत्मसम्मान विदेशों ने खरीद लिया है उन्हे चोरी करने की क्या आवश्यकता है? तो होम डिलीवरी ही कर दी जायगी।''[२०] इस प्रकार अपने गौरव को वे भूले है।

आज पाश्चिमात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण तो हमारी संस्कृति चरमरा रही है। पाश्चिमात्य संस्कृतिका इतना प्रभाव दिखाई दे रहा है। इससे भारतीय कला, संगीत, नयी एवं पुरानी सांस्कृतिक मान्यताओं में परस्पर टकराव हो रहा है।

४.५.२. चलचित्र (फिल्म) का प्रभाव :

संस्कृति को बनने और बिगड़ने में चलचित्र (फिल्म) का प्रभाव बहुत बड़ा है। संस्कृति पर प्रभाव डालनेवाले हिस्सों में ये महत्व का हिस्सा है। इससे संस्कृति बनने की अपेक्षा अधिक बिगड़ती जा रही है।

वर्तमान भारतीय संस्कृति का एक सशक्त माध्यम फिल्मों को माना जाता है, किन्तु सच्चाई यह है कि, आज के चलचित्र, अपराध मारधाड, सैक्स, वासनापूर्ति के प्रदर्शन मात्र बन गये है। विदेशी थीम को लेकर उसका भारतीयकरण करके उसे विकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जिसका भारतीय जनता पर बहुत अधिक कुप्रभाव हो रहा है।

जिस तरह फिल्मों मे भारतीय लड़की खेतों में, पहाडों पर, शहर और गाँव की गलियों में, सड़को पर किसीं युवक के पीछे दौड़कर लुका –छिपी का खेल खेलती है, वैसा यथार्थ जिन्दगी में कभी संभव नही होता। कच्ची उमर की मासूम किशोरियाँ अपरिपक्व मस्तिष्क होने से गुमराह हो जाती है। चाहे गँवार ही क्यों न हो परंतु आज की फैशन में सज्जित फिल्मी हिरोईन का प्रभाव उनपर पड़ता है और वे अंधानुकरण करने लगती है। युवतियों की हेयर स्टाइल आये दिन बदलती है। साड़ी से –सलवार–कुर्ता, सलवार–कुर्ते से जीन्स पँट –शर्ट। कभी मोटी लंबी बाँहो वाला फ्रॉक तो कभी बिना बाहों वाला हिरोईन के हिसाब से ड्रेस पहनने की स्टाईल में प्रतिदिन परिवर्तन दिखाई देता है। इस प्रकार सिनेमा के कारण हो रहे सांस्कृतिक विघटन पर व्यंग्यकार ने व्यंग्य किया है।

आज के चलचित्रों पर बड़े चातुर्यपूर्ण ढंग से व्यंग्यकार ने 'आपबीती' में व्यंग्य किया है, ''खुशनसीब है जो पिक्चरों में प्रेम करते है। प्रेम क्या होता है, जिंदगी का मजा लेते है। घूमते – फिरते है, गाते–बजाते है, पार्टियाँ एटैण्ड करते है। सारा मुहल्ला, जात– बिरादारी और रिश्तेदार उनका विरोध करते है। मारधाड होती है। प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए लड़ता है, मारता है मार खाता है, घर में किसी से प्रेम किया तो क्या किया यहाँ तो किसी को आँख भर देखों कि माँ–बाप कहेंगे अच्छा है, शादी कर दो।''[२१] इस प्रकार कल्पना और वास्तव दोनों में अंतर आता है।

'ग्यारहवें राजकुमार का चरित' में सीधे – सपाट शब्दों में व्यंग्य करते है – ''सिनेमा के कारण ही देश के लड़के–लड़कियाँ आजकल दस वर्ष की ही अवस्था में यौवन का अनुभवन करने लगते है और मृत्यु पर्यंत करने रहते है। देश के यौवन की वृद्धि में सिनेमा ने जो सहयोग दिया है उसका अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता।''[२२] सिनेमा

संस्कृति के कारण भारतीय संस्कृति टूट रही है, जो भारतीय संस्कृति की विशेषता के विरोधाभाषी है, इसपर व्यंग्य किया गया है।

व्यंग्यकार ने एक ही थीम फिल्मों पर व्यंग्य किया है। जिनका आरम्भ, मध्यांतर और अंत सब कुछ का पहले से ही पता लग जाता है, सिनेमा को लेकर व्यंग्यकार ने की हुई छींटाकशी इस प्रकार है, – ''ऐसी उबाऊ फिल्मों में न कोई कथा–प्रवाह होता है, न रोचकता न उत्कण्ठा। नाच – गानो से भरपूर घिसी–पिटी कहानी पर आधारित फिल्मों का कोई सिर–पैर नहीं होता। जो न मनोरंजन करती है, न आदर्श प्रस्तुत करती है।''[२३] इसी फिल्मों को लेकर व्यंग्यकार ने व्यंग्य किया है।

फिल्मों की फैशन के अनुकूल आज युवतियों की हेयर स्टाईल में प्रतिदिन परिवर्तन दिखाई देता है। परीक्षा का समय नजदिक है और बातें फिल्मों की हो रही है, इस बात को व्यंग्यकार ने व्यंग्य करते है जैसे, ''लड़कियाँ बड़ी –बड़ी बालियाँ और लम्बे लहके हुएँ इयररिंग पहनती है। मैंने उनसे बाते की तो वे बोली–बाबू आजकल यही फैशन है बड़ी बालियों का या लंबे इयरिंगो का।''[२४] इस प्रकार फिल्मों का अंधानुकरण युवा पीढि द्वारा होता है।

फिल्म में व्यवसायिकता आ जाने से निर्माता इस सोच के शिकार हो गए हैं उसमें ज्यादा बिकने वाले माल–सेक्स और हिंसा भरी हो। शहरों, कस्बों और चौराहें पर लगे फिल्मों के विज्ञापन सभी का ध्यान दूर से खींच लेते है। इस पर व्यंग्यकार व्यंग्य करते है – ''निर्माता उस उँची औरत को सूटिंग के लिए भिखारिन बनाने आदेश दे रहा था, तो इधर नेता उस भिखारिन को पोस्टर के लिए उँची औरत बनाने के आदेश दे रहा था।''[२५] आज हर व्यक्ति अपनी दृष्टि से दुनिया देखने का काम करता है। दर्शनीय चित्रों को लेकर व्यंग्यकार ने व्यंग्य कसा है, ''फिल्म अभिनेता – अभिनेत्रियों को छोड़कर और लोग सुंदर चेहरा लेकर पैदा होते है।''[२६]

आज की स्थितिसे व्यथित होकर लेखक दिग्दर्शक नायक और निर्माता पर व्यंग्य करते हुए लिखते है – ''किसी के पास धन की कितनी तगडी पूँजी हो वह सफल फिल्म नहीं बना सकता जब तक उनकी गाँठ में मूर्खता की तगडी पूँजी न हो।''[२७]

फिल्म में टू–इन –वन कोई बड़ी चीज नहीं है। यहाँ तो कोर–इन जीरो भी होते है – जिसमें लेखक, दिग्दर्शक, नायक और निर्माता मिलकर वही कथानक, कही संवादो को लेकर फिल्म बनाते है, अधिकांश फिल्म बनाते है, अधिकांश फिल्म में यही सब कुछ होता है। इन स्थितियों पर व्यंग्यकार ने व्यथित होकर अपनी बात कही है।

'भारत के अज्ञात वीर' में फिल्मों की पुलिस पर व्यंग्य की छींटाकशी की है – हिंदी फिल्मों में जो पुलिस दिखाई जाती है, आदर्श चरित्रों का यथार्थ रूप क्या होता है। इसी पर पूरे व्यंग्य 'कर्तव्यनिष्ठा' में उसका मुकाबला किसी देश की पुलिस नहीं कर सकती। फिल्म में यदि हीरो पुलिस इन्सपेक्टर हुआ तो उसे अपने कर्तव्य पर कैसे मर मिटना चाहिए इस पर मासूम सी दिखनेवाली नायिका भी हिरो की कर्तव्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उसे अपला तन–मन– दे बैठती है।

व्यंगकार अपनी व्यंग से कभी कोई और वह फिल्म फ्लॉप हो जाती है। ऐसी यथार्थ स्थिति का चित्रण करते हुए मृदु चुटकिया भरी है, जैसे ''इधर डिप्टी डायरेक्टर रामकरण जैन की पत्नी ने अपने पति से झुककर कहा हमें तो ये खेल सायको जैसे लगे।''

''नहीं सायको जैसा मजाकिया खेल है। भाई खून–खच्चर हो तो हमें बता देना। हम बाहर जाकर बैठ जायेंगे। वह बोली और फिर पास बैठी गुप्ता जी की पत्नी को बताने लगी कि सायको के बाद उन्हें नींद नहीं आई थी पूरी रात।''[२८]

भारतीय फिल्मों के पर्दे पर दुनिया में सबसे औरत को देखा जा सकता है। नारी जीवन और स्वभाव का अस्वाभाविक और अतिरंजीत चित्रण इसमें मिलता है। वर्तमान में सास है तो साक्षात रणचंडी और बहु है तो नितांत गऊ और चुपचाप आँसू बहाने वाली। सौतेली माँ खलनायिका है तो दूनिया की बुराइयों की जड़ जिसमें भलापन कहीं भी शेष नहीं है लेकिन अंत में वहीं औरते एकदम नाटकीय तरीके से बदल कर वह भली औरत बन

जाती है। फिल्मी नारी का यह रूप व्यंग्यकारो की नजर से कैसे बच सकता है? हिरोईन से लेकर भिखारीन तक के विविध रूपों की तरफ व्यंग्यकार ने पैनी दृष्टि से देखा और नकलीपन पर व्यंग्य किया गया है।

वर्तमान संस्कृत के प्रतीक चल–चित्रों में कितना अतिरंजित रूप दिखलाया जाता है। कितना अश्लील चित्रण होता है। कथानक में यथार्थता का अभाव, चरित्र – चित्रण में बेसिर पैर की बाते तथा प्रस्तुतीकरण में व्यावसायिक दृष्टि आज की फिल्मों में आम बातें है जिनका बुरा प्रभाव मनोरंजन के नाम से युवा पीढी पर पड़ता है। इसके कारण संस्कृति बनने की अपेक्षा बिगड़ती ही जा रही है। व्यंगकार का इसपर किया हुआ व्यंग्य मार्मिक एवं सार्थक है।

४.५.३. दूरदर्शन का प्रभाव :

दूरदर्शन समाज को प्रभावित करने वाले सबसे प्रभावी माध्यम के रूप में आज अपनी भूमिका निभा रहा है। दूरदर्शन का प्रमुख रूप से कार्य मनोरंजन करना है, परंतु आज इस छोटे परदे पर दिखाए जानेवाले कार्यक्रम का तथा विज्ञापनों का समाज पर कुप्रभाव दिखायी देता है। भविष्य की भूमिका के बारे में तो कल्पना भी नहीं की जा सकती है। व्यंग्यकार डॉ. नरेंन्द्र कोहली ने सबसे अधिक व्यंग्य इस क्षेत्र में प्रसारित किये जाने वाले विज्ञापनों पर किया है। एक ही चीज का विज्ञापन अलग–अलग ढंग से इतना किया जाता है कि, सामान्य नारी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। सुंदर वह स्त्री मानी जाती है, जो अत्याधुनिक लिबास में लिपटी या 'खुली' विज्ञापित वस्तुओं का स्नो, पावडर, क्रीम, साबुन, लिपिस्टिक, हेयर ऑयल वगैरे का अधिक से अधिक प्रयोग करे, इसपर व्यंग्य करते हुए व्यंग्यकार कहते है, ''हम तो उसे ही सुंदर कह देते है जो चेहरे पर पाऊडर ठीक से मलना जानती है। स्नो मली चमडियों की इस आधुनिक जगमगाहटने हमें चौधिया रखा है। उन दिन दुकान पर देखा कि लिपिस्टिक कितने रंगो में मिलने लगी है। देखा और नारी जाति को सराहा जो इन सब शीशियों को होंठो पर रगड़ती है। गजब करती है। मेरे धन्य भाग कि मैं स्त्री नहीं हूँ।''[२९] इस प्रकार विज्ञापनों का असर लोगों पर पडता है।

विविध विज्ञापनों को देखते हुए इनकी विसंगतीयों पर व्यंग्यकार व्यंग्य करते हुए कहते है – ''विज्ञापन साबुनों का इस्तेमाल यदि हम करें तों हमारी त्वचा बिल्कुल फिल्मी हिरोईन की त्वचा जैसी सुकोमल बन जाती है। विज्ञापन में खुद फिल्मी हिरोईन अपनी मधुर मुस्कुराहट के साथ बात की ताइत करती हुई दिखायी देती है। साबुनों के विज्ञापन देखने से पहले अज्ञानवश हम यह समझ बैठे होते है कि, फिल्मी हिरोईनो की त्वचा का राज उनके उँचे रहन–रहन और खान–पान में समाया हुआ है। किंतु अब हमें सही–सही ज्ञान हो जाता है भले ही हम झोपड़ीयों मे रहते, रूखा–सुखा खाते हो क्रीम के कभी दर्शन न किये हो, हमारी त्वचा पर क्रीम – ही क्रीम चढ जाए यदि हम विज्ञापित साबुनों का इस्तेमाल करें।''[३०] कभी–कभी विज्ञापनों की इस प्रभावशीलता को देखते है तो लगता है कि, विज्ञापन न होते तो सारा बाजार ही सूना–सूना लगता न ही नारी इतनी आज के बच्चे इतने ज्यादा – चतुर होते।

कुछ विज्ञापन तो ऐसे है जिन्हें देखने के लिए बच्चे टी.वी. के सामने बैठते है। सुंदर, मोटे– मोटे एवं स्वस्थ बच्चे, देखने की आदत आँखो को हो गयी है। इसकी ओर व्यंग्यकार व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते है – ''इक्कीसवी सदीं में प्रोटीन युक्त आहार खा–खाकर मुटलाए बच्चे तथा साबुनों के विज्ञापन में इतराती नारियों को टी.वी. पर देख–देखकर हमारी आँखो का जो डाइजेशन बिगड़ जाता है, उसके लिए जरूरी है कि बीच–बीच में बाढ और सूखे से ग्रस्त कुछ चिपके हुए पेट और धँसी हुई आँखो वाले – चेहरे भी टी.वी. पर दिखाए जाएँ।''[३१] इस प्रकार समाज की दो स्थितियाँ यहाँ स्पष्ट करने को कहा है।

आज समाज को प्रभावित करने वाले सबसे प्रभावी माध्यम के रूप में दूरदर्शन को अपनी भूमिका निभानी है। लेकिन इस छोटे परदे पर दिखाए जानेवाले कार्यक्रम तथा विज्ञापनों का कुप्रभाव समाज पर अधिक होने लगा है। इससे भारतीय संस्कृति बनने की जगह पर बिगड़ती जा रही है। संस्कृति को सुधारने की जगह पर दूरदर्शन का उसके बिगाड़ने में बड़ा योगदान दिखाई देता है।

४.५.४. फैशन प्रियता :

फैशन प्रियता भी संस्कृति को बनाने बिगड़नेवाले घटकों में से एक है। इसके कारण भी संस्कृति बनने की अपेक्षा बिगड़ती जा रही है। आज की फैशन परस्ता में और आधुनिक बनने की होड में भद्दा प्रदर्शन मात्र दिखाई देता है। नारियों में आधुनिक होने की जो धारणा मन में बनी रहती है। उससे तो दिखायी देता है कि, वे फैशन नहीं स्वयं पर अत्याचार कर रही है। उनकी इन गलत धारणाओं तथा व्यवहारों से कभी–कभी तो उन पर तरस आता है। सुंदर दिखने के लिए दुबला–पतला–छरहारा होना अनिवार्य मानकर वे न ढंग से खा सकती है न खुलकर कोई क्रिया कर सकती है। आधुनिक और फैशनेबल होने के नामपर स्त्रियाँ अपना अच्छा–खासा रूप बिगाड़ लेती है। उनकी दृष्टि में बाल कटवाना आधुनिक होता है। तभी वह कहती है– मैने अपने बाल कटवा दिये है। लुंगी और बेलबॉटम पहनती हूँ दूपट्टे को एकदम छोड दिया है। आप मुझे पिछडी हुई कैसे कह सकते है।''[३२] इस प्रकार फैशन के नाम पर आज की नारी भारतीय संस्कृति को भूल रही है। इसे व्यंग्यकार ने उजागर किया है।

फैशन के नाम पर सौंदर्य प्रतियोगिता में नारी के अंगो का नख–शिख–दर्शन होता है। इस पर व्यंग्यकार आघात करते है, ''प्रभु ने ऐश्वर्य तो प्रदान कर दिया, मगर छप्पर फाड़कर नहीं, ब्लाऊत फाड़कर।''[३३] पुरूषो की छद्म मनोवृत्ति का परिणाम है कोई भोली–भातली लङकी भी अंग प्रदर्शन कर विश्व की सबसे सुंदर युवती के रूप में चुनी जाती है। इस फैशन का आघात भारतीय संस्कृति पर हो रहा है। इस कारण भारतीय संस्कृति चरमरा रही है। फैशन के नाम पर आज छात्र की वेश–भूषा में भी बदलाव आया है, इस पर लिखते है, ''पतलून कसी हुई और चपटी हैं। कमीजों के तीन चार बटन खुले हुए है। भीतर से गंदी गंधाती बनियन आती है। आस्तीनें रूई की बत्ती के समान लपेंटी हुई है और सीकों जैसी बाते नजर आ रही है। किसी के भी हाथ में काफी किताब नजर आ रही है। किसी किसी ने दो चार कागज और एकाध किताब मोड–तोडकर अपनी जेबो में ठूँसी

हुई हाथ में डायरी जैसा कोई चित्र पकड रखा है।''[३४] इस प्रकार डॉ. नरेन्द्र कोहली ने फैशन को लेकर आज के छात्रों को सोचने के लिए मजबूर किया है।

फैशन की दुनिया में विज्ञापन संस्कृति पर व्यंग्यकार ने व्यंग्य करते हुए कहा है, ''तीसरे कमरे में विश्व की एक महान सुंदरी बैठी थी। मुझे देखकर मुस्करा दी आप जानना चाहते है, मै कौन सा साबुन इस्तेमाल करती हूँ। मै एक साबुन इस्तेमाल ही नही करती। अलग–अलग मौसम में, दिन के विभिन्न समयों में मै अलग–अलग अंगो पर विशेष ढंग के कई साबुन उपयोग में लाती हूँ।''[३५] इस प्रकार व्यंग्य करते हुए फैशन ने नाम पर मौसम के साथ शरीर के अलग–अलग भागों पर साबुन के उपयोग पर व्यंग्य किया है। जो आज फैशन बन गयी है।

आज फैशन के नाम पर विज्ञापनों में प्रदर्शित नारी के मौसम सौंदर्य का दरिया मॉडलिंग है। आज ट्रक, मोटार सायकल, सिगारेट, शराब, साबुन, पान मसाला, पेप्सी आदि चीजों के लिए नारी को प्रदर्शित किया जाता है। कंपनी को यह डर रहता है की, बिना लड़की का जिस्म दिखाए उत्पदित चीज की विक्री में कमी आ जाएगी। उनका यह मानना है कि विज्ञापनों में नारी के रहते यदि माल में कुछ कमियाँ है तो वे ग्लैमर युक्त विज्ञापनो में नारी के रहते यदि माल में कुछ कमियाँ है तो वे ग्लॅमर युक्त विज्ञापनों मे नारी के रहत दब जाएँगी आज की फैशन परस्त संस्कृति में ओढ़ना, बिछोना, खाना–पीना, सब बातें फैशन के नाम पर चल रही हैं

आज की फैशनपरस्त नारी आधुनिक बनने की होड़ में अपने आपका भद्दा प्रदर्शन मात्र करने लगी है। के. पी उनकी विसंगति की ओर कटाक्ष करते हूए लिखते है, ''अति लघु कंचुकी, नाभिदर्शनाा, साडी, गॉगल, हेयर ऑयल, सब इकठ्ठे महक उठे।''[३६] फैशन के नाम पर आज जो विकसित सोच अपेक्षित है उनकी मात्रा अत्यल्प दिखाई देती है, किंतु फैशन के नामपर नारियाँ, आज संस्कृति को भूलकर अनोखे अंदाज में संचार कर रही है।

आज कुल मिलाकर फैशन के नाम पर सब कुछ नकली प्रसाधनों का प्रयोग किया जाता है। इस पर व्यंग्यकार लिखते है की, शहरों में तों फैशन परस्तता ज्यादा बढ़ रही

है, जैसे, ''रंग पुता चेहरा नकली–नकली पलकें बरौनियाँ कटे बाल, जंगे कंधे, उभरा वक्ष और कसी हुई कमीज। सुडौल और गोरी टांगे और उंची एडी के सैडल।''[३७] इस प्रकार आज फैशन के नाम पर वेशभूषा को परिवर्तित करना आम बात हो गयी है। जो देहात की तुलना में शहरों में ज्यादा है। शहरी जीवन की यह फैशन प्रियता ने लोगों को अपनी मुट्ठी में बंद कर दिया है।

व्यंग्यकार लिखते है, ''मिस अलका युनिवसिटी में उतनी ही प्रसिध्द थी, जितनी के सिनेमा क्षेत्र में माला सिन्हा। सुबह का सारा टाईम आईने सत्संग मे ही व्यतीत करती थी। बालों का नित्य डिजाइन बदलती थी। तंग सलवार पारदर्शी कमीज, तेज लिपीस्टिक, हाथ में वैनिटी बॅग या उनकी वेशभूषा थी। मोटे होने के डर प्रायः भूखी ही उठ जाती थी।''[३८] फैशन के नाम पर आज न लोगों को न समय का ध्यान है, न खाने–पीने का! शरीर को बनाये रखने के लिए आधा पेट खाना खाया जाता है क्यों की फैशन युग है।

आधुनिक बनने की होड में नारीयाँ चाहे फँसती हो या न हो किंतु दूसरों के देखादेखी से हम भी पिछडे नहीं है ऐसा दिखाने की उनमें एक होड सी लगी है, ''फैशन के नाम पर वह पराभूत हुई और जाकर बाल कटवा आई, अगले ही दिन और आधी दर्जन औरतें जाकर अपने अपने बाल कटावा आयी।''[३९] फैशन के नाम पर आज नारीयों में प्रतियोगिता बनी हुई है। तो फैशन के नाम पर कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाती है।

आजकल नारीयों मे नित्य परिवर्तित होने की फैशन बन गयी है उससे तो यह दिखायी देता है की, वे फैशन नहीं स्वयं पर अत्याचार कर रही है। उनकी इन गलत धारणाओं तथा व्यवहारों से कभी कभी तो उन पर तरस आता है। सुंदर दिखने के लिए दुबला पतला होना अनिवार्य मानकर वे न ढंग से खा सकती है न खुलकर कोई क्रिया कर सकती है। व्यंग्यकारों ने नारी को इस दशा पर तथा फैशन के नाम पर उनकी सोच की दिश पर व्यंग्य किया है। पाश्यात्य नारियों की फैशन देखकर आज भारतीय नारियाँ भी इस फैशनेबल संस्कृति का अनुकरण कर रही है, जिसके माध्यम से कटु कटाक्ष किय है।

व्यंग्यकार ले लिखा है कि, ''लोग कपडा नही, उसका रंग देखते है। खोपडी नही, बातो को अलग नजर से देखते है, वे उच्च कला के घोसलें है।''[४०] मनुष्य का जीना कला है, लेकिन मनुष्य जीवन में कला और संस्कृति के नाम उत्पन्न फैशन को देखता है। इससे जीवन में कई प्रकार की विसंगतियाँ पैदा होती है, इसे कोई नही देखता, इसे उजागर किया है।

सांस्कृतिक व्यंग्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेक व्यंग्यकारों ने अपनी संस्कृति पर कठोर व्यंग्य किया हुआ है। अपनी संस्कृति की प्रशंसा अनेक पाश्चात्य विव्दान करते है किंतु फैशन परस्तता के कारण हम अपनी संस्कृति को बिगाड़ते जा रहे है।

आज आधुनिक बनने की होड में आज का पुरूष वर्ग एंव नारी वर्ग अपने आप पर अत्याचार तो कर रहे है। किन्तु फैशन के नाम पर गलत धारणाओं तथा व्यव्हारों से कभी–कभी इतना तरस आता है कि सुंदर दिखने के लिए दुबला पतला, छरहारा होने के लिए अच्छा खासा रूप बिगाडा जाता है। आज की वर्तमान पीढ़ि आधुनिक है। इसमें विकसित सोच की कमी दिखाई देती है। नारी भी आधुनिकता के नाम पर फैशन नहीं अपने आप पर अत्याचार कर रही है। सुंदर दिखने के लिए दुबला पतला होना, अनिवार्य मानकर न खा सकती है न कोई अच्छा कार्य कर सकती है। इससे संस्कृति बनने की जगह बिगड़ रही है।

४.५.४.पत्र–पत्रिका :

पत्र–पत्रिकाएँ यह माध्यम भी संस्कृति को बनाने बिगाड़ने वाला माध्यम कहा जाता है। इसमें भी यह माध्यम अधिक मात्रा में संस्कृति बिगाड़ने का ही काम करता है। आज पत्र–पत्रिकाओं में चित्रित बदलता स्वरूप उससे अछूता नहीं है। पारिवारिक, साहित्यिक, पत्र–पत्रिकाओं में भी सनसनीपूर्ण चीजें अधिक खपती है इसलिए एक अनुपात में छपती है। पत्र–पत्रिकाओं में भी सनसनीपूर्ण चीजें अधिक खपती है इसलिए एक अनुपात में छपती है। पत्र–पत्रिकाओं में भी कला से अधिक कला व्यवसाय पर जग्नता के सौंदर्य से अधिक नग्नता के भागों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा प्रसार के कारण पढ़ने लिखने की प्रवृत्ति का प्रोत्साहन मिला है। दैनिक पत्रो, साप्ताहिक एंव मासिक पत्रिकाओं को पढ़नेवाले पाठकों की संख्या प्रचूर मात्रा में बढ़ गई है। इसका परिणाम यह निकला कि साहित्य में पत्रिकांओ की बाढ़ गई है। साहित्यिकता गौण हो गयी। टीमटामा विज्ञापन और प्रचार प्रमुख बन गये है। आये दिन नये नये पत्र–पत्रिकाओं का जन्म होने लगा है और उसी तेजी से उनका लोप भी होने लगा है। पत्र–पत्रिकाओं को चलाने के लिए नये–नये हथकण्डे अपनाये जाने लगे है। सिनेमा और सिनेमाई साहित्य के बढ़ने के कारण पत्र–पत्रिकाओं में सनसनीपूर्ण चीजे अधिक बिकती है। इसलिए एक अनुपात में छपती है। पत्र–पत्रिकाओं में चित्रित नारी के बदलते रूप भी उससे अछूते नहीं है। पत्र–पत्रिकाओं में कला से अधिक नग्नता के भागो पर बल दिया जाता है। क्या लाभ है? जबकि वह कहीं छपता ही नहीं।''[४१]

आज की पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादक का ध्येय केवल पत्रिका को अधिक बिक्री करना होता है। इसके लिए वह आकर्षक मुखपृष्ठ और उनके रंगीत तस्वीरों के जरिए उसका रूप खुबसूरत बनाने का प्रयत्न करता है, चाहे वह गलत ढंग से ही क्यों न प्रस्तुत की गयी हो, इस पर व्यंग्य करते व्यंग्यकार लिखते है, ''पिछले दिनों मैने एक रंगीत तस्वीर में एक लडकी को सितार लिए देखा। वह सितार गलंन पकडे थी। जो ऊँगलियाँ पर्दो पर होती चाहिए थी वह उससे तार बजा रही और ऊँगली में। मिजराब होनी चाहिए वह पर्दे पर रखी थी। और बजाने के लिए उसने सितार को यों सीने से चिपका रखा था, जैसे वह वाघ नही कोई बॉयफ्रेंड हो। चित्र देखकर मुझे 'थ्री टायर तरस' आया।''[४२] एक उस लड़की पर, दूसरा फोटोग्राफर पर जिसने चित्र लिया और तीसरा उस सम्पादक पर जिसने कन्या के कोन देखे मगर सितार के नहीं। खुशी हुई कि एक भारतीय वाद्य प्रगति कर रहा है। और उन क्षितिजों को स्पर्श कर रहा है जहाँ उसकी जरूरत नहीं थी।

लेखक के लिए पहली बाधा सम्पादक है, उससे भी बडी बाधा प्रकाशक है। प्रकाशक ने लेखक पर बन्धन लगा दिया है। साहित्यकार प्रकाशन को बिना प्रसन्न एवं आश्वस्त किये कुछ नहीं छपवा सकता। प्रकाशकों के मानसिक स्तर का यथार्थ खाकर

व्यंग्यकार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है, प्रकाशक बोले ''एक बात और, आप इस कविता और व्यंग्य वगैरह के जाल में कब तक उलझे रहेंगे? अपराध, सैक्स, जासूसी और अनैतिक प्रेम इन विषयों पर कुछ क्यों नहीं लिखते? हमारे सुझाव आपने शायद उस इंसान के बारे में सुना होगा जिसके हाथ से एक बार वक्त ऐसा। निकला था कि, फिर कभी वापिस नहीं लौटा, ठीक वैसी ही स्थिति जैसी कि एक बार आपकी पांडुलिपि के साथ हुई।''[४३] इस प्रकार प्रकाशकों की मनमानी पर प्रकाश डाला है।

साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं औरंतो के इसी रूप को उभारती है। जो अत्यंत लज्जाजनक और निदंनीय है। पत्रिका के सम्पादक पत्रिका को लोकप्रिय करने के लिए पत्र–पत्रिका पर औरतों की कैसी भी तस्वीरे छपवाते है। इस पर व्यंग्य करते हुए व्यंग्यकार लिखते है, ''पत्रिका चलने के गुरू सीख और नंगी जाँघो का बाजार लगाओ। नंगी तस्वीरो और नंगी जाँघो का बाजार गर्म रखो, उस पर कविता छापो, नंगी छातीपर कहानी छापों तब देखो तुम्हारी पत्रिका कैसे दौडती है।''[४४] इस प्रकार नैतिकता का पतन शुरू हुआ है।

पत्रिकाओं को आकर्षक बनाने के लिए विशेषांको का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। छोटी–छोटी बातों के उपर विशेषांक निकलने लगे है। इसी लक्ष्य पर व्यंग्यकार लिखते है, ''समाचार छापने के भी पैसे मिलते है, और न छापने के भी।''[४५] इस प्रकार समाचार अपने दायित्व से भटक रहे है।

प्रकाश को तो अपनी थैली भरनी है, इससे चाहे साहित्यकार की प्रतिमा का गला ही क्यों न घोटा जाये। साहित्य और कला का महत्व कुछ भी नहीं। साहित्यकार हीन बन गया है। सम्पादकों और प्रकाशकों का भी प्रभुत्व स्थापित हो गया है। उनकी मनमानी है, उनका हस्तक्षेप है, ऐसी विकृत एवं विसंगतिपूर्ण स्थिति पर व्यंग्यकार ने विडम्बनात्मक शैली में प्रहार किया है, ''वाकई सम्पादक काफी बडी चीज है। वह चाहे तो गधे को बाप बना सकता है। उदाहरण की तौर पर मै खुद को अपने को प्रस्तुत करता हँ। हाँ अलबत्ता जो, है वह सम्पादक से भी बडी चीज है। वह चाहे तो गधे को लेखक क्या सम्पादक तब बना सकता है। प्रकाशक की लीला अपरम्पार है। साहित्य में जो कुछ भी प्रकाश शेष है वह

प्रकाशकों के कारण है। आधुनिक कवियों के कारण नहीं।''[४६] इस प्रकार आज के युग में सम्पादकों की मनमानी जादा हो रहीं है। इस बात का प्रमाण मिल जाता है।

आज की गणतंत्र प्रणाली में पत्रकार की शक्ति परमात्मा से भी बढ़ गयी है। ऐसा कहना पड़ रहा है कि पत्रकारों (प्रभो) आपकी लीला अपरंपार है। सृष्टि का निर्माता भी इतने कार्य कर नहीं सकता लेकिन पत्रकार इन सभी कार्यो को चुटकी में कर देते है उसी पर व्यंग्य करते हुए चतुर्वेदी लिखते है, ''आप रूपए नव्वे नये पैसे के बराबर शक्ति रखते है। पानी में आल लगा देना आपके बायें हाथ का खेल हैं। लिल का ताड़ कर देना आपके नित्य कर्म का एक स्वाभाविक अंग है। आप प्रलयकारी है। आपकी कलम आपका तीसरा नेत्र है। आपकी यदि कृपा हो जए तो एक दिन में गंगू तेली राजा भोज बन सकता है। एवं तुक्कडा महाकवि बन सकता है, एक नवीन युग प्रवर्तक बन सकता है, एक ब्लैक मार्केटियर समाजसेवी बन सकता है। एक लफंगा लोकप्रिय नेता बन सकता है। आपकी शक्ति अपरंपार है। हे अंतर्यामी।''[४७]

आज के रूप मे कहा जाता है कि, आज पत्र–पत्रिकाओं में चित्रित बदलते स्वरूप भी उससे अच्छुते नहीं है। पारिवारीक या साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं में भी सनसनी पूर्ण चीजे अधिक बिकती है। पत्र–पत्रिकाओं में कला से अधिक कला के व्यवसाय पर सौन्दर्य से अधिक नम्रता से भागोंपर अधिक ध्यान दिण जा रहा है। इसी कारण संस्कृति टुट रही है। आज के दिनों में पत्र–पत्रिकाओं को चलाने के लिय नये–नये हथकण्डे अपनाये जाने लगे है। पत्र–पत्रिकाएँ यह माध्यम भी संस्कृति को बिगाडने वाला माध्यम कहा जाने लगा है। पत्र–पत्रिकाअे के कारण संस्कृति बनने की जगह बिगडती जा रही है।

४.५.५.आधुनिकतापन :

आज के सांस्कृतिक परिवेश में एक विषय स्थिति उत्पन्न हो गई है। एक ओर प्राचीन संस्कृकति की अवहेलना की जा रही है उसे हय माना जा रहा है। दूसरी ओर संस्कृति के कोई नये मानदण्ड या रूप बन नहीं पा रहे है। परिणाम यह निकल रहा है कि नयी और

पुरानी सांस्कृतिक मान्यताओं का परस्पर टकराव हो रहा है। इस कारण स्थिति बहुत विषम और विसंगत बन गई है।

उच्चवर्ग और मध्यवर्ग पूर्ण रूप से विदेशी साँचे में ढल रहा है। इस कारण क्लब, पार्टी में सहभागी होना आधुनिकता माना जा रहा है। इनके कारणवश शराब पी जाती है। भिन्न–भिन्न स्त्री पुरूष कमर में हाथ डाले नाचते है। नैतिकता और चरित्र का नामोनिशान नहीं रहा है। अपने अफसर को खुश करने के लिए कर्मचारी, क्लब, पार्टी में अपनी पत्नी को पूरी छूट देते है।

आधुनिक संस्कृति के नामपर आज की पीढ़ी कुछ भी याने नाक भी कटवाना चाहती है। नाक भी काट लिया तो उसे उच्च आदर्श मानती है। पीढीयों में परस्पर मतभेद है। एक पीढ़ी प्राचीन से ही जुडी रहना चाहती है। जब कि दूसरी पीढी क्रांतिकारी परिवर्तन लाकर नूतन संस्कृति को अपनाना चाहती है। संस्कृति के नाम पर आडम्बर, अनैतिकता भ्रष्टाचार ही पनप रहा है। इसी को लक्ष्य बनाकर व्यंग्यकारने व्यंग्य करते है, ''दोस्त वर्तमान सभ्यता जेब काट है।''[४८] हर आदमती दूसरे की जेब काट रहा है। सिर्फ उसकी जेब सुरक्षित है जो दूसरे की जेब पर नजर रखता है। हर आदमी दुसरों की अनैतिकता का अनुकरण करके अपने आपको बड़ा बनाना चाहता है जिसमें अपनी संस्कृति को भूलकर दूसरों का अनुकरण करना ही अच्छा समझता है।

आधुनिक भारतीय संस्कृति की विरूपता पर व्यंग्यकार ने व्यंग्य करते हुए लिखते है, ''विदेशों में तो सुधर जाओ हर जगह अपनी हिन्दोस्तानी प्रतिभा का प्रदर्शन क्यों करते हो। विदेश में यदि किसी को गाली देना हो तो भारतीय संस्कृति और उसके लोगों की हद से ज्यादा तारीफ करो।''[४९] इस प्रकार स्वयं के लाभ हेतु देश के प्रतिभा के साथ लोग खिलवाड करते है।

ऐसी ही स्थिति का यर्थाथ चित्रण करते है। बुढ़ा कर्नल कॅप्टन की सुन्दर पात्नी के साथ नृत्य करना चाहता है। पत्नी वनपरणीता है। वह कोने में छुंईमुई बन बैठी रहती है। कर्नल कॅप्टन को समझाता है– ''कैप्टन तू अपनी पत्नी को कफ्यर्ड बनाओ, क्लब में लीड

कर सकती है..... कर्नल बात तो कॅप्टन से कर रहा था किन्तु उसकी आँखे उसकी पत्नी की ओर ही थी उसी प्रकार जैसे घोड़े की आँखे घास की ओर लगी होती है।''[५०] इस प्रकार नारी की स्थिति आज के गुण में उपभोग के अलावा कुछ नहीं है।

डान्स शुरू हुआ। किसी की बीबी किसी के साथ नाच रही थी। कर्नल की पत्नी ने स्वयं एक जवान कॅप्टन को पकड़ रखा था। आधुनिक संस्कृति में विदेशी चीजों के प्रति इस कदर आकर्षण बढ़ गया है। व्यंग्यकार इसी लक्ष्य पर सीधे–सीधे व्यंग्य करते है, ''मैं देखता हूँ कि मेरे आसपास और हो सकता है कि सब जगहों का यही हाल हो। विदेशी चीजों के प्रति पागलपन बढ़ता जा रहा है। कोई भी चीज हो–खाने की हो, पहनने की हो, ओढने–बिछाने की हो सजावे की हो, पर यदि विदेशी हो तो अधिक पसन्द की जाती है। तो हर चीज विदेशी ही अच्छी होती है। बस गेहुँ ही विदेशी किसी को पसन्द नहीं आता।''[५१] इस प्रकार सभी विदेशी वस्तुओं का स्वीकार करने में हम गर्व महसूस करते है।

आज आधुनिक संस्कृति के कारण आदमी झूठी प्रतिष्ठा पाने के लिए अपनों का शोषण कर रहा है, इस प्रतिष्ठा को पाने के लिए वह निन्दा करता है, चाटुकारिता अपनाता है इस पर व्यंग्य करते हुए व्यंग्यकार ने लिखा है, ''मस्के के बिना तो रोटी भी हजम नहीं होती, परमात्मा भी नहीं मिलता भगवान की खुशामद का नाम ही भजन है।''[५२] आधुनिक संस्कृति का प्रभाव इतना छा गया है कि, भगवान को पाने के लिए आज भजन की जरूरत आ गयी है। इस बाहय आड़म्बर का प्रभााव बढ़ता जा रहा है और आधुनिक संस्कृति के कारण भारतीय संस्कृति चरमरा रही है।

व्यंग्यकार अपने व्यंग्य में आधुनिक संस्कृति के बढ रहे प्रभाव को चित्रित करते हैं पार्टी में शराब बहते प्रवाह और प्रभाव को देखकर व्यंग्यकार का मन पीड़ा से भर जाता है, इस संदर्भ में वे लिखते है, ''मै सोचता रहा कि देश में सुखाग्रस्त क्षेत्रों में शराब की सिंचाई क्यों नहीं की जाती? अगर शराब, अफसर समाजसेवक और कलाकार पैदा कर सकती है तो क्या वह बाजरा और चावल पैदा नहीं कर सकती है।''[५३] आधुनिक संस्कृति से प्रभावित

होकर समाज एवं भारतीय संस्कृति दिशाहीन बन गयी है। इसी कारण भारतीय संस्कृति टूट रही है।

आज यह स्पष्ट होता है कि, आधुनिक संस्कृति प्रदर्शन की संस्कृति है। प्रदर्शन का एक अंग विज्ञापन है। विज्ञापनों के माध्यम से नारी के भौंड, भद्दे, बीभत्स रूप की ही प्रस्तुति हो रही है। इनमें नारी का योग्य रूप ही अधिक आया है। क्लब, डिनर, पार्टी, लंच आदि बातें स्वाथ्य सिध्दि के लिए है। स्त्रियों को उपभोग करने का साधन बनाया गया है। ऐसे समाज में अवैध यौन संबंध की मात्रा अधिक देखी जाती है। आधुनिकता के आगमन के साथ साथ स्त्रियों में बदलाव आया है। अर्थिक क्षेत्र में स्वावलंबिता के कारण उन्हे आजादी मिली है। फलतः अधिक मात्रा में बाहरी बदलाव आया है। आधुनिकता के कारण संस्कृति बनने की जगह बिगड़ती जा रही है। आधुनिकतापन यह घटक भी भारतीय संस्कृति को अधिक मात्रा में बिगाड़ने का काम करता है।

४.५.६. नारी की स्थिति :

वेदो, पुराणों और शास्त्रों में भारतीय नारी को उच्च स्थान दिया गया है। उसको उँचा आसन तो दिया गया है, किंतु यथार्थ यह है कि आज समाज में अधिकांश रूप में पत्नी का दासी रूप और पति का स्वामी रूप ही दिखलाई देता है। गृह–लक्ष्मी या गृह सम्राज्ञी का रूप न्यूनतम है। पति आज भी परमेश्वर है, पत्नी को उसकी पूजा करनी चाहिए और आँख मुँदकर उसकी हर आज्ञा का पालन करना चाहिए। समाज में आदर्श और यथार्थ का वह विरोधाभास सदैव से ही रहा है।

भारतीय समाज ने नारी को देवी, अर्धांगिनी, भार्या, सहधर्मिनी, गृहलक्ष्मी, रानी, पटरानी आदि नाना विशेषणों से सज्जित किया है। उसे उच्च आसन पर आसीन किया गया है। पत्नी का बड़ा ही आदर्श चित्र खीचा गया है। समाज के एक ओर नारी को पूज्य स्थान दिया जाता है। उसे माँ, बहन, पत्नी और बेटी का रूप दिया जाता है। हवाई यात्रा से लेकर ब्लेड तक के विज्ञापन में नारी शरीर का प्रदर्शन परमावश्यक बन गया है। अधिक से अधिक

कामुक और कामोत्तेजक मुद्राओं में नारी को विज्ञापन का माध्यम बनाया जाता है। यह नारी की ही नग्नावस्था का ही द्योतक है।

नारी को अब भी पर्दे की रानी बनाकर ही रखा जा रहा है। गृह लक्ष्मी की संज्ञा देकर उसकी स्वतंत्रता, प्रतिभा एवं योग्यता को दबाया जाता है। अपनी 'वाईफ' को 'तवाईफ' समझा जाता है, ''हमारी मुश्किल यह है कि हम हमेशा दूसरे की बीवी की खोज करते है। दूसरे की स्टेज पर आ जाए, अपनी न आये। दूसरे की नहीं आती है तो कहते है कि बड़े पिछडे हुए लोग है, हम पिछडे नहीं है जिन्होंने उसका मुरब्बा बनाकर घर में छोडा है।''[५४] इस प्रकार दूसरों की औरतों पर आदमी की नजर हमेशा रहती है। यह वास्तविक सामने आती है।

नारी को आज भी आचारदान में बंद करके रखा जाता है, केवल अपने को चखने के लिए। नारी दासी के समान है। उसके विक्रम के केंद्र स्थल अनेक है, जहाँ हर एक प्रकार का माल खरीदा, वेचा जा सकता है, ''अनाथालय, विधवाश्रम नारी निकेतन ऐसी अनेक सामाजिक संस्थाये तो इस दिशा में इतनी नि'स्वार्थ होती है कि, उनके यहाँ सामान के नापसन्द आने पर अदल–बदल करने की भी समुचित सुविधा प्राप्त होती है।''[५५] नारी विषयक दृष्टिकोन आज समाज में अच्छा नहीं दिखाई देता नारी के बारें में जो दृष्टिकोन समाज में है, उसे बदलने की बहुत जरूरत है। व्यंग्यकार ने इस ओर संकेत किया है।

एक कवयित्री के पति उसकी रचना पत्रिका में छपवाने के लिए संपादक के पास ले जाता है। संपादक कुछ संशोधन कर वह बात कवयित्री को समझाना चाहता है। उसके लिए पत्नी का संपादक के दप्तर में आना आवश्यक है। पति महोदय शंकालू स्वभाव के है, जो पत्नी को चार दिवारों में ही बंद रखना चाहते है। इस पर पति महोदय संपादक को कहते है कि, वे नहीं आ सकती क्योंकि वह वाईफ है। हमारा समाज तो यह मानता है कि, कि जो बाहर आए वह तवाईफ है जब इसकी पत्नी बीमार होती होगी और डाक्टर आता होगा, तो यह ''स्टैथकोप अपने सीने में लगवाता होगा। डाक्टर कहता होगा, बीमार तो वे है। ये

कहता होगा, हॉ मेरी जाँच कर लिजिए, वे वाईफ है न।''[५६] इस प्रकार नारी को आज भी घर में दबाकर रख दिया जाता है।

अपनी पत्नी को पर्दो के पीछे रखा जाता है। उसे समाज के सामने नहीं लाना चाहते लेकिन दूसरों की नारियों को तवाईफ समझा जाता है। ऐसी स्थिति आज समाज में दिखायी देती है। उसको बदलने की जरूरत है। इसी ओर व्यंग्यकार ने संकेत किया है।

जब स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म के प्रति एकनिष्ठ हो तभी पुरूष का पुरूषार्थ समाज को दृष्टि से मान्य होता है, व्यंग्यकार व्यंग्य करते हुए लिखते है, ''प्रतिष्ठा का जब पलायन करने का समय आता है तो स्त्री की प्रतिष्ठा पहले जाती हे।, पुरूष इस जगह घास खाकर भी मुंछे उँची किए पगडी सलामत लिए फिरता है। जबकि उसकी पत्नी उसके सिवा अन्य किसी पुरूष के संपर्क में आकर कहीं और दिल लगाए उसकी प्रतिष्ठा घट जाती है।''[५७] इस प्रकार पुरूष के सभी अपराध माफ होते है। नारी के लिए ऐसी स्थिति हमारे सामज में नहीं है।

व्यंग्यकारने नारी प्रतिष्ठा के अपने पौरूष से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति और इसके कारण नारी को मिले दासी रूप को स्पष्ट किया है।

नारी पूजनीय है, इस पर व्यंग्य करते हुए एक गो भक्त से भेट में कहते है, ''बच्चा, यह कोई अचरज की बात नहीं है। हमारे यहाँ जिसकी पूजा की जाती है, उसकी दुर्दशा कर डालते है। यही सच्ची पूजा है नारी को भी हमने पूज्य माना है। उसकी दुर्दशा की तो तुम जानते ही हौ।''[५८] इस प्रकार नारी के प्रति दिखावटी सहानुभूति दिखाई जाती है।

नारी देवी है, इसलिए वह पूजी जाती है। ग्रंथो में भी कहा है कि जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवताओं का वास होता है। इस पर व्यंग्य करते हुए लिखते है, ''तुलसीदास एक जगह नारी को ढोलक की तरह दोनों तरफ से पीटने को कहते है और दुसरी जगह उनकी तुलना देवियों से करते है। यह हमारी परंपरा है कि, किसी चीज को पतित भी रखें और उसकी प्रतिष्ठा भी करते रहें।''[५९] इससे नारी को सम्मान नहीं मिलता, यह बात स्पष्ट होती है।

आज स्त्रियों के आत्मविश्वास और पुरूषों की कुष्छा ने आपस की तकरार को जन्म दिया है। बात तलाक तक नहीं पहुँची हत्या तक गयी है। इस पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखते है, ''देश में चोरी–छुपे का मामला है, यहाँ तलाक नहीं होता औरत की नाक काट ली जाती है यही उसकी हत्या कर दी जाती है।''[६०] नारी विषयक दृष्टिकोन समाज में इतना बदल चुका है कि, उसको जहर दिया जाता है, नहीं तो उसकी हत्या की जाती है। इस मर्म स्पर्शिता को व्यंग्यकार ने स्पष्ट किया है।

'भारतीय संविधान एक ओर स्त्री–पुरूष को समानता के अधिकार देता है, स्त्री को विशेष संरक्षण प्रदान करता है, सरकार और नेता संविधान की हटाई देते है। इस संबंध में कुछ अधिनियम भी पास किए गए है। परंतु भारतीय नारी की स्थिति में कुछ विशेष सुधार नही आया है। नारी और पुरूष समानता की बात कुछ पढ़े लिखे उच्च मध्यमवर्गीय परिवारों तक हि सीमित है।

आज को नारी मुक्ति का व्दार खुलने पर तो उसका शोषण और भी अधिक हुआ है। उसका विज्ञापनों में अश्लील प्रयोग होने लगा है। दहेज के कारण उस पर होने वाले अन्याय, अत्याचार में कोई कमी नहीं आयी है। समाज में स्त्रियों की दशा के कारण वह शोषित है। नारी का जीवन विसंगतियो से भरा है। समाज में नारी को एक ओर पूज्य स्थान दिया जाता है। उसे माँ, बहन, बेटी, और पत्नी का रूप दिया जाता है। दूसरी ओर उसको विकृत कर, तंगा कर विज्ञापनों में प्रदर्शित किया जाता है। हवाई यात्रा से लेकर ब्लेड तक के विज्ञापन मे नारी शरीर का प्रदर्शन परमावश्यक बन गया है। अधिक से अधिक कामुक और वासनोत्तेजक मुद्राओ में नारी को विज्ञापन के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। जिसके कारण संस्कृति बिगड़ती जा रही है।

४.५.७. थोथापन :

आज संस्कृति के कार्यक्रम, नृत्य, संगीत, कला आदि बाहयाडम्बर एवं दिखावे की वस्तु बनकर रह गये है। आप यह छिछोरी संस्कृति के प्रतीक बन गये है। आज सांस्कृतिक समारोहों का आयोजन किसी स्वार्थ पूर्ति, आत्म प्रशंसा, चाटूकारी या फिर चंदा उगलने

लिए किया जाता है। सांस्कृतिक समारोहो में आवाजे कसना, सीटियाँ मारना, गालियाँ बकना, महिलाओं पर कागज की गोलीबारी करना, कुर्सियाँ तोडना, आदि का बोलबाला होने लगा है। हुल्लड, हंगामे और शोर शराबो ने सांस्कृतिक कार्यक्रम में जगह बना ली है।

आज विज्ञापन संस्कृति के कारण लोग इतने गिर गये है कि विज्ञापित चीजों का ही इस्तेमाल कर रहे है, अच्छाई एवं बुराई की तरफ कोई देखने के लिए तैयार नही है। ऐसी सोचनीय स्थिति बनी है।

नई पीढ़ी व्दारा गांधीजी के नामपर अधनंगा घूमना और अत्यल्प वस्त्रों के प्रयोग करना इसे गांधीजी के प्रवृत्ति ने धारणा को विकृत और दूषित किया है। इस बाहय आडम्बर युक्त योयी संस्कृति पर व्यंग्य कसते है, ''कभी नहीं सोचा होगा गांधीजीं ने कि देश के इन फैशन परस्तों की स्वतन्त्रता के लिए स्वतन्त्रता माँग रहे है। जो अति वैभव से पीड़ित है और करने को कोई काम न होने के कारण नंगे होकर विचित्र वेशभूषा में राजधानी की फैशनेबल सडको पर बहुरंग मयाचे फिरते है। उन्होंने मिनी धोती गरीबी के प्रतीक रूप में बाँधी थी और यारों ने उन्हे फैश का मॉडल बना दिया।''[६१] इस प्रकार रास्ते पर रंगीन कपडे पहनकर घूमना एक गर्व का अनुभव होता है।

व्यंग्यकार सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर व्यंग्य करते हुए लिखते है, ''असली सांस्कृतिक कार्यक्रम चार–पाँच दिन तक चला। गाने वाले आये, गा बजाकर चले गये। कवि आये, कविता कविता कर निकल गये। चिंतक–किंतक आये, खूब बोले बड़बड़ाये। एक मुशायरा हुआ जो पूरी रात चला, तो दूसरे दिन हॉल के कचरे में अधजली बूँझी बीडी, सिगारेट के टुकडों के साथ कोई ही क्विंटल वाह–वाह और मुकर्रर इशारद निकने जो राम भर में हात में जमा हो गये थे।''[६२] आज संस्कृति योनी बनी हुई है, इसी ओर व्यंग्यकार संकेत करते है।

इस प्रकार बाहयाडंबर के थोथेपन ने संस्कृति को घेर डाला है। बाहयाडम्बर की यह प्रवृति दिन–ब–दिन भारतीय संस्कृति को खोखला बना रही है। हम भारतीय अपनी संस्कृति को भूलने जा रहे है। ने इस पर किया हुआ व्यंग्य सार्थ है।

४.५.८.विदेशीपन :

आज भारतीय समाज में विदेशीपन तथा विदेशी वस्तुओं मे प्रति अधिक मोह बढ़ गया है। यह धारणा बन रही है, कि, यदि खान–पान में रहन–सहन में, वस्त्र पहनने में तथा भाषा, के प्रयोग में विदेशीपन को अपनाया जाता है, तो शानो–शौकत में चार चाँद लग जाते है। विदेशगमन और विदेशपन के आकर्षण में न जाने कौनसा जादू भरा है कि, हर कोई विदेश जाने के लिए लालायित रहता है। विदेशी भाषा एवं विदेशीपन का भूत भारतवासियों पर वेश–भूषा, खान–पान, रहन–सहन और संस्कृति को हेय तथा निम्न दृष्टि से देखते है। विदेशीपन के प्रति आस्था रखनेवालों पर व्यंग्यकारों ने व्यंग्य किये है।

४.५.८.१. विदेशी आचार– विचार :

मनुष्य का आचार–विचार ही सभ्य समाज जीवन का आधार होते है। अपनी–अपनी संस्कृति के आचार–विचार होते है। आज हम पर विदेशी आचार–विचारों का प्रभाव है। आज भारतीय समाज में विदेशी आचार–विचार का प्रभाव ज्यादा दिखायी देता है।

भारतीयों के आचार–विचार में विदेशीपन के प्रति आस्था इन सीमा तक बढ़ गई है कि उसके आगे नैतिकता, सच्चरित्रता का कोई महत्व नहीं रहा है। व्यंग्यकार ने इसी पर विडम्बनात्मक व्यंग्य किया है। एक ऐसी ही लड़की अपने अमरीकन वॉस व्दारा गर्भवती हो जाने पर गर्व करती है। वह कहती है ''मै जानती हुँ वह दोगला और हरामी होगा। पर उसका सन्मान मुझसे अधिक होगा क्योंकि घटिया स्वार्थी और नपुंसक लोगों के करण घटिया बनोय गये भारत जैसे राष्ट्र का वह अंग नहीं होगा। मै जिन्दगी भर अपनी राष्ट्रीयता के कारण लज्जित रही, पर मैने अपनी अगली पीढ़ी को उबार लिया है।''[६३]

भारतीय संस्कृति का एक रूप एकदम विदेशी साँचे में ढल गया है। नैतिकता एवं चरित्र को ताक पर रख देना तथा विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति को स्वीकार कर लेना ही आज का आचरण बन गया है। इस विदेशी मानसिक गुलामी के प्रति व्यंग्य किया है। संक्षेप में भारतीय समाज में आचार–विचार में भी परिवर्तन हुआ है, जिसके कारण भारतीय संस्कृति बनने के जगह बिगड़ती हुई दिखायी देती है।

४.५.८.२. विदेशी रहन–सहन :

आज भारतीय समाज की रहन–सहन विदेशीपन के कारण बदल रहा है, बंगला, कार, टेलीफोन, मोबाईल, रंगीन टी. वी. व्ही. सी. आर. युक्त व्यक्ति प्रतिष्ठत माना जाता है। इस झूठी प्रतिष्ठा को पाने के लिए वह कुछ भी करता है। प्रतिष्ठा बढ़ते ही दैनंदिन जीवन में भी परिवर्तन होता है, ''जैसे हमारी पोजीशन बढ़ गई। पत्नी ने चाय में दो चम्मच चीनी डालनी शुरू कर दी। बच्चों ने पिताजी की जगहर पापाजी कहना शुरू कर दिया। मित्रों को हमारी कविताएँ ज्यादा अच्छी लगने लगी। मालिक ने किराये का नोटिस वापिस के लिया।..... मुहल्ले की चंद सुन्दर लड़कियाँ मुझे नमस्ते करने लगी।''[६४] एक गरीब क्लार्क से प्रमोशन पाकर अफसर बन गया तो उसके सोए भाग्य एकदम से जाग गये और वह सन्मान पाने लगा। जन–सामान्य आदमी को कोई पूछता तक नहीं, ऐसी झूठी प्रतिष्ठा भारतीयों में भरी हुई है।

आज समाज में रहन–सहन को इतनी प्रतिष्ठा दी जाती है कि, जो अच्छे बंगले में नहीं रह सकता वह भी किराये से क्यों न हो बंगले में रहना चाहता है। किराये की रक्कम इतनी बढ़ चढ़कर बतायी जाती है। कि जिसे चुकाकर आदमी खायेगा क्या इस पर महँगे किराये का मकान लिया जाता है। इस प्रकार झूठी शानौ–शौकत, रहन–सहन में उँचा दिखाना चाहते है। रहन–सहन में विदेशी का अनुकरण तथा सिनेमा का अनुकरण दिखायी देता है, इससें शहर ही नहीं गाँव भी अछूते नहीं है। कस्बे की लङकियाँ तक अपने आपको फिल्मों की फैशन के अनुकूल ढाल लेती है, व्यंग्यकार कहते है। '' तुम मुझसे प्रेम क्यों करना चाहती हो?'' उसने पूछा। ''उससे मेरा काम आसान हो जाता है।''[६५] इस प्रकार प्रेम आज सहज उपलब्ध होनेवाली चीज है।

आज भारतीय समाज में विदेशी रहन–सहन का तथा सिनेमा का अनुकरण दिखायी देता है। इससे शहर ही नहीं गाँव भी अछूते नहीं है। बंगला, कार टेलिफोन मोबाईल, कलर टी. व्ही. व्ही. सी. आर युक्त व्यक्ति प्रतिष्ठित माना जाता है। रहन–सहन में इस झूठी

प्रतिष्ठा को पाने के लिए वह कुछ भी करता है, इस विदेशीपन के अनुकरण के कारण आज भारतीय समाज की रहन–सहन में बहुत कुछ बदलाव आया है।

४.५.८.३ विदेशी वेश–भूषा :

भारतीय समाज में विदेशी वेशभूषा का अनुकरण किया जा रहा है। युवतियों की हेअर स्टाइल आये दिन बदल गयी है। साडी से सलवार कुरती, सलवार कुरती से जीन्स पॅन्ट, शर्ट, कभी मोटी, कभी लंबी बाँहो वाला फ्रॉक, इस प्रकार स्टाइल में प्रतिदिन परिवर्तन दिखता है। व्यंग्यकार ने व्यंग्य किया है,'' मैने उनसे बातें की तो वे बोली–बाबू आजकल यही फैशन है, बडी बालियों का या लम्बे इयररिंगों का।''[६६] इस प्रकार वेश–भूषा में विदेशीपन तथा फिल्मों का अनुकरण किया जा रहा है, लडकियाँ बडी–बडी बालियाँ और लम्बे लटके हुए इयररींग पहनने लगी है। जो विदेशीपन की नकल मात्र है। विदेशी वेश–भूषा के कारण आज आयु का पता नही चलता, सौंदर्य बढ़ाने वाले प्रसाधन है पाऊडर, स्नो, क्रीम, लिपिस्टिक बालों को रचना, मैचिंग आदि से मनुष्य धोखा खा जाता है। ''ड्राइंग रूम में रमा जी की मॉ जी से नहीं। रमा जी को बुला दो अंदर से। इस पर नौकर बोला– अभी आप रमा जी से नहीं। रमा जी को बुला दो अंदर से। इस पर नौकर बोला– अभी आप रमा जी की माँ से नहीं खुद रमा जी से ही तो बात कर रहे थे।''[६७] इस प्रकार आज वेश–भूषा एवं विदेशी सौंदर्य बढ़ाने वाले प्रसाधनों से आयु का पता नही चलता इस के इस कारण ठिक तरह से आदमी को पहचाना भी नहीं जाता।

वेश–भूषा पर फिल्मों का बढ़ता हुआ प्रभाव एवं अर्ध–विकसित गाँवो का चित्रण बडी व्यंग्यात्मकता के साथ व्यंग्यकार ने किया है, '' सामने सड़क पर एक सज्जन प्रकट हुए जिन्होने धोती के उपर बुशर्ट धारण कर रखी थी। एक हाथ में ट्रांजिस्टर या और दूसरे में काशीफल। संक्रमण काल के सच्चे प्रतिनिधी।''[६८]

भारतीय ग्रामों में विदेशीपन, नगरीय सभ्यता के सम्पर्क में आने के कारण गाँवो का शहरीकरण स्पष्ट दिखायी देता है। विदेशी को उतरण पहनना भी उँची सभ्यता माना जाता

है। इस प्रकार व्यंग्यकार ने विदेशी वेश–भूषा का अनुकरण करने वाले भारतीय ग्रामों पर व्यंग्य किया है।

आज भारतीय ग्राम हो या शहर समाज में विदेशी वेश–भूषा का अनुकरण किया जा रहा है। युवतियों की हेअर स्टाइल आये दिन बदलती है। वेशभूषा में परिवर्तन दिखायी देती है। इस के कारण भारतीय वेश–भूषा नष्ट होकर, विदेशी वेश–भूषा को ज्यादातर अपनाया जा रहा है यह भारतीय संस्कृति के लिए खेदजनक बात है।

४.५.८.४. विदेशी खान–पान :

भारतीय समाज के खान–पान में भी परिवर्तन हुआ है, क्लब, डिनर, बुफे, विदेशी शराब पीना, काँटे के चम्मच से खाना यह विदेशी सभ्यता की देन है। व्यंग्यकार कहते है, '' बीच–बीच में उन शराब की बोतलो को भी देखता रहा जो कि डिनर टेबूल की दिशा में ले जाई जा रही थी। उनकी संख्या और गति को देखकर में सोचता रहा।''[६९] भारतीय समाज के खान–पान में आज इतना परिवर्तन हुआ है कि, काँटे–चम्मच से खाना, क्लब में शराब पीना, विदेशी डान्स करके लड़कियों की कमर मे हाथ डालकर झूमना यह विदेशी क्लब संस्कृति उंची सोसायटी की जंगी सभ्यता के अड्डे बन गये है।

इस प्रकार क्लब, डिनर मे बुफे पध्दति को व्यंग्यकरा ने अपने व्यंग्य मे विदेशी खान–पान पर जो परिवर्तन हुआ है। इसी को लेकर व्यंग्यकार ने कसकर व्यंग्य किया है।

४.५.८.५. विदेशी भाषा :

देश में भाषा की अनिश्चितता के साथ ही एक और बढी विकृति शिक्षा पध्दति में व्याप्त है। विदेशी भाषा के प्रति लगाव मानसिक दसता की निशनी है। आज स्वतन्त्रता प्राप्ति के इतने दिनों पश्चात् भी संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने की मानसिकता नहीं है। अंग्रेजी भाषा का महत्व राष्ट्रभाषा से कही अधिक है। राष्ट्रभाषा हिन्दी की ही आवस्था पर व्यंग्यकार ने तिलमिला देनेवाला व्यंग्य किया है, ''हिन्दी माता पर ऐसा क्या संकट आ गया? मुख्य मंत्रियों ने राष्ट्रीय एकता के हक्क में अंग्रेजी को अनन्त काल तक

चलाने का निश्चय किया है। जिस तरह अंग्रेजी की छत्रछाया में देशी रजवाड़े रहते थे।''[७०] इस प्रकार राजनीतिक लोगोंने हिंदी के हित में कभी सोचा नहीं था।

व्यंग्यकार विदेशी प्रेम, और निम्न वर्गीय व्यक्ति व्दारा अंग्रेजी स्कूल में बच्चे पढ़ाने की मानसिकता आदि पर व्यंग्य करते हुऐ लिखते है, ''भारत में जहाँ अधिकांश लोक अपने घर में खण्डवा तक जाने का किराया नहीं जुटा पाए, उनके लिए इस विश्वभाषा का साथ जरूरी समझा गया है। क्या पत्ता, सुनिया धोबन के नंगे बच्चों को कब विदेश जाना पड़े तब यदि उन्हें अंग्रेजी नहीं थी तो वह शर्म की बात होगी।''[७१] इस प्रकार अंग्रेजी को लेकर विदेशी भाषा के आकर्षण पर व्यंग्य करते हुए सामाजिक दयनीयता का करूण चित्र खींचा गया है।

अपनी भाषा को हीन समझने और विदेशी भाषा को ही सब कुछ समझने की दयनीय स्थिति पर खेद प्रकट करते हुऐ राष्ट्र भाषा को लेकर अर्थ के वाद–विवाद पर व्यंग्यकार ने कटाक्ष किया है, ''भारत मे पहले एक भाषा थी। उस भाषा का देव भाषा बनते ही भारत में अनेक भाषाओं का राज्य राष्ट्रभाषा मानी राष्ट्र में बोली जानेवाली भाषा, मात्र भाषा के पश्चात् सब राजनैतिक भाषा–शास्त्री पितृ–भाषा की खोज में भी लगे हुए है।''[७२] ऐसी विषमता पर मजीठियाने व्यंग्य व्दारा क्षोभ प्रगट किया है।

अंग्रेजी के निष्कासन और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने के बीच जो रूकावटे है, इस पर आघात करते हुए सीधी चोट व्दारा व्यंग्य करते है, ''हिन्दी के लेखक और लेखिकायें भी घरों में बच्चो से 'मम्मी डैडी' कहलाते है। पत्नियों को 'डार्लिंग' बुलाते है। बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ात है और अंग्रेजी में ही बात करते है। शादी–विवाह के निमंत्रण पत्रों को अंग्रेजी में ही बात करते है। शादी विवाह के निमंत्रण पत्रों को अंग्रेजी में छपवाते है। मृत्यू पर भी अंग्रेजी में रोना, मातृभाषा में रोने से कही प्रभावकारी है। अंग्रेजी में भले नाम भी अच्छे लगते है।''[७३] विदेशी भाषा के प्रति लगाव मानसिक दासता की निशानी है। इसी कारण राष्ट्रभाषा को आनेवाले दिनों में बड़ा खतरा है। जो देश के लिए भी खतरे से

खाली नहीं है। हिन्दी भाषा को पिछड़ा समझने की भावना जिस दिन समाप्त होगी उसी दिन मातृभाषा राष्ट्रभाषा का आसन ग्रहण कर सकेगी।

ब्लड बँक की अप्सरा में व्यंग्यकार ने हिन्दी की विचित्र स्थिति का सजीव चित्र खींचते हुऐ खिल्ली उड़ाई है, ''गुढ हिन्दी बोले मेरे दुश्मन। मै मो जेहरू परिवार वाली हिन्दी बोलती हूँ जो बाकी सब लोग चाहे समझ जायें, बस हिन्दी पढे– लिखे और हिन्दी बोलने वाले न समझते''.....''तुम बहक जाते हो। मैने पुच्छा था वह विषकन्या क्या होती है?''.....'' पुराने जमाने में होती थी, उसे भी हिन्दी में विषकन्या ही कहेंगे। सरकार की सरल हिन्दी में जहर लौडिंया कहने से कोई नही समझेगा।''[७४] अभी तक राष्ट्रभाषा का कोई निश्चित रूप नहीं की विसंगतीपूर्ण अवस्थां पर व्यंग्यकारों ने खुब मात्रा में व्यंग्य किया है।

व्यंग्यकार ने शिक्षा–पध्दती को लेकर अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शासन के प्रति कहते है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश की आवश्यकताओं के अनुसार इसमें आमुल परिवर्तन लाना चाहिए था। परिणाम यह निकला कि अंग्रेजी शिक्षा पध्दति के कारण आज का विद्यार्थी दिशाशून्य है, बेरोजगार है, इसपर कटाक्ष करते हुए वे कहते है।'' पंरन्तु इस देश में अंग्रेजी शासन की प्रतिष्ठा के बाद यहॉ की शिक्षा पध्दति को एकाएक ऐसा रूप प्राप्त हुआ कि इस देश का विद्यार्थी एक और तो अपने देश के संस्कारो से एकदम विच्छिन्न हो गया और दूसरी और पाश्चात्य साहित्य में प्राप्त बातों को उसने इस रूप से ग्रहण कर लिया माना ये उन देशो में अनादिकाल से चली आ रही है।''[७५] अंग्रेजी भाषा के शिक्षा पध्दति के कारण हम हमारी संस्कृती को भुल रहे है। एवं पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण कर रहे है। इसलिए भारतीय संस्कृति में टकराहट पैदा हो रही है।

अंग्रेजी भाषा को लक्ष्य करवा के अपने निबन्ध 'स्मार्टनेस का मूल्य' में कहते है '' देश मेरे बच्चे के समान अपनी बोली में छत्तीसों गीत गाता है और सरकार मेरी पत्नी के समान कहती है, 'बेटा यह नहीं'। वह स्कूलवाला अंग्रेजी गाना थँक्यू गॉड.....! बच्चा गूँगा हो जाता है और चुपचाप हाथ जोडकर खडा हो जाता है। उसकी माँ फिर एवरी थिंग। और

बच्चा भुख निगलकर बडी कठिनाई से कह देता है, 'इंग' माँ ताली मार देती है अहा कितना स्मार्ट है। मै सोचता हुँ गांधीजी देखे तो शर्म आ जाये। स्मार्टनेस के पीछे देश का गूँगा कर दिया कम्बख्तोंने।''[७६] व्यंग्यकार कहता है अंग्रेजी चाहे लिखनी, पढनी, बोलनी न आती हो स्मार्टनेस का गुंग वही है। किस सीमा तक अंग्रेजी भाषा के दास बन गये है। इसको लक्ष्य किया है।

संक्षेप में देश में भाषा कि अनिश्चितता के साथ ही एक और बडी विकृति दूषित शिक्षा पध्दति के रूप में व्याप्त है। हिन्दी को मातृभाषा, राष्ट्रभाषा कहा जाता है। हिन्दी को समस्त देश की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने की बात भी जिसमें राष्ट्रीय एकता को स्वरूप मिलता है। लेकिन अंग्रेजी चाहे लिखनी, पढनी, बोलनी न आती हो स्मार्टनेस का गुण वही है। रौबदाब उसीसे पडता है। किस सीमा तक अंग्रेजी भाषा के दास बन गये है। व्यंग्यकार ने विदेशी भाषा का खुलकर विरोध व्यंग्य के माध्यम से किया है।

अंतः स्पष्ट होता है कि भारतीय में विदेशीपण तथा विदेशी वस्तुओं के प्रति अधिक मोह बढ गया है। यह धारणा बज रही है कि, खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा तथा विदेशी भाषा का प्रतिदिन प्रयोग करने से शानो–शौकत में चार चाँद लग जाते है। भारतीय संस्कृति का रूप एकदम से विदेशी साँचे में ढल गया है कि विदेशी संस्कृति एवं सभ्यता का अंगीकार कर लेना ही आज का आचरण बन गया है। रहन–सहन में विदेशीपन आया है, बंगला, कार, मोबाईल, कलर टि.व्ही., व्ही.सी.आर युक्त व्यक्ती को प्रतिष्ठित माना जाने लगा है। भारतीय ग्राम हो या शहर समाज में विदेशी वेश–भुषा का अनुकरण किया जा रहा है। युवतींयो की हेअर स्टाईल आये दिन बदल रही है। साडी से सलवार, कुर्ता, फिट जीन्स, पॅन्ट–शर्ट आदि में प्रतिदिन परिवर्तन दिखाई देता है। विदेशी खान–पान (क्लब में शराब पीना, विदेशी डान्स करके लडकियों के कमर में हाथ डालकर झुमना, यह विदेशी क्लब संस्कृति ऊँची सोसायटी की नंगी सभ्यता के अड्डे बन गयी है। परिणाम स्वरूप भारतीय समाज का सांस्कृतिक ढाँचा चरमराने लगा है। संस्कृति बनाने की जगह बिगड रही है।

निष्कर्ष :

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण तो हमारी संस्कृति ऱ्हास की ओर जा रही है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव वश चरमरा रही है। आज पाश्चात्य संस्कृति का इतना प्रभाव दिखाई देता है। भारतीय कला, संगीत, नयी एवं पुरानी सांस्कृतिक मान्यताओं में परस्पर टकराव हो रहा है। व्यंग्य का सृजन भी उस समय होता है, जब विसंगतियाँ पैदा हो जाती है। तब व्यंग्यकारों की लेखनी से व्यंग्य ही वैदग्ध्यपूर्ण तीखी अभिव्यक्ति होती है। इसलिए व्यंग्य और संस्कृति का संबंध जब से संस्कृतियों में विसंगतियों पैदा हो रही है, तब से व्यंग्य और संस्कृति का संबंध आता रहा है एवं आता रहेगा।

संस्कृति बनने और बिगडने में चलचित्र (फिल्म) का प्रभाव बहुत बडा है। सच्चाई यह है कि, आज के चलचित्र में अपराध, मारधाड, सेक्स, वासनापूर्ती के प्रदर्शन मात्र बन गये है। विदेशी थीम को लेकर उसका भारतीयकरण करके उसे विकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सिनेमा के कारण देश के लडके–लडकियाँ आजकल दस बरस की अवस्था में यौवन का अनुभव करने लगे है। इससे संस्कृति बनने कि अपेक्षा अधिक बिगडती जा रही है। संस्कृति मानव समाज की आन्तंरिक उपलब्धियों की सुचक है, तथा आचार–विचार, उन्नती–अवन्नती, रिती–रिवाज, धार्मिक–राजनीतिक एवं सामाजिक अवस्थाओं तथा परम्पराओं की परिचायक है।

दूरदर्शन समाज को प्रभावित करनेवाले सबसे प्रभावी माध्यम के रूप में आज अपनी भूमिका निभा रहा है। इसे छोटे परदे पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रम तथा विज्ञापन का जो प्रभाव समाज पर दिखाई देता है। इससे भारतीय संस्कृति को सुधारने की जगह संस्कृति बिगाडने में बडा योगदान दिखाई देता है कि सांस्कृतिक चेतना हमारे जीवन एवं व्यक्तित्त्व का सुंदर, समृध्द और सार्थक बनाती है।

आज की वर्तमान युवा पीढी आधुनिक बनने की होड में अपने आपका भद्दा प्रदर्शन मात्र करती है। इसमें विकसित सोच की कमी दिखाई देती है। नारी भी आधुनिकता के

नामपर फॅशन नही अपने आप पर अत्याचार कर रही है। सुन्दर दिखने के लिए दुबला पतला होना अनिवार्य मानकर न खा सकती है। न कोई अच्छा कार्य कर सकती है। फॅशन प्रियता के कारण संस्कृति बिगडती जा रही है। भारतीय संस्कृति की पाचन–शक्ती अत्याधुनिक बलवती रही है। जहाँ अन्य–संस्कृतियाँ आकर और प्रभाव डालकर भी उसी में समाहित हो गई। यही भारतीय संस्कृति का मूल रहा है।

आज के दिनों में नये पत्रिकाओं का जन्म होने लगा है और उसी तेजी से उनका लोपन भी होने लगा है। पत्र–पत्रिकाओं को चलाने के लिए नये–नये हथकण्डे अपनाये जाने लगे है। पत्र–पत्रिकाएँ यह माध्यम भी अपनी संस्कृति बिगाडनेवाले माध्यम कहा जाने लगा है। पत्र–पत्रिकाओं के कारण संस्कृति बनने की जगह बिगडती जा रही है।

आधुनिकता के आगमन के साथ–साथ स्त्रियों में बदलाव आया है। आर्थिक क्षेत्र में स्वावलंबिता के कारण उन्हें आजादी मिली है। परिणामतः अधिक मात्रा में बाहरी परिवर्तन आया है। क्लब, डिनर, पार्टी, लंच का जमाना आ गया है। स्वार्थ सिध्दी के लिए नारीयों का उपयोग करने का शिष्ट साधन बन गया है, इसके कारण समाज में अवैध यौन संबंध की मात्रा अधिक देखी जाती है। आधुनिकतापण के कारण संस्कृति चरमराने लगी है।

समाज में नारी को एक और पूज्य स्थान दिया जाता है। उसे माँ, बहन, पत्नी, और बेटी का रूप दिया जाता है, तो दूसरी और उसको विकृत करके विज्ञापनों में प्रदर्शित किया जाता है। हवाई यात्रा से लेकर ब्लेड तक के विज्ञापनों में नारी–शरीर का प्रदर्शन परमावश्यक बन गया है। अधिक से अधिक कामुक और वासनोत्तेजक मुद्राओं में नारी को विज्ञापन में प्रर्दशित किया जाता है। नारी की यह स्थिति अत्यंत सोचनीय बन गयी है। जिसके कारण संस्कृति बिगडती जा रही है।

भारतीय संस्कृति पर बाह्य आडम्बर युक्त थोथी संस्कृति हावी हो गयी है। आज नयी पीढी का रूखा–सूखा चेहरा, सायबर या कॉफी हाऊस में अड्डेबाजी करनेवाला तथाकथित बौध्दिक वर्ग संत्रस्त है, कुंठाग्रस्त है, उस दम को बचाने के लिए तरह–तरह के

नशे चल रहे है। इन्हें अपने देश की सभ्यता और संस्कृति की सुदृढ बुनियाद की कोई खबर नहीं है क आज–कल की सभ्यता की नींद टुँटती हुई दृष्टिगोचर होती है।

भारतीय समाज में विदेशीपन तथा विदेशी वस्तुओं के प्रति अधिक मोह बढ गया है। यह धारणा बन रही है कि, यदि खान–पान, रहन–सहन, वेशभूषा तथा विदेशी भाषा का प्रतिदिन प्रयोग करने से शानो–शौकत में चार चाँद लग जाते है। भारतीय संस्कृति का रूप एकदम विदेशी साँचे में ढल गया है। विदेशी संस्कृति को अंगीकार कर लेना ही आज का आचरण बन गया है।

प्राप्त परिस्थिति को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि, सांस्कृतिक ढाँचा यदि चरमरा जाता है। तो देश कि स्थिति को बिगडने में देर नहीं लगती।

आज के सांस्कृतिक ढाँचे को व्यवस्थित बनाये रखने के उद्देश्य से व्यंगकारोंने बिगडनेवाले घटकों पर व्यंग्य किया है। और संस्कृति को बचाने की डॉ. नरेन्द्र कोहलीजी ने चेतावनी दी है। उन्होने व्यंग्य से सांस्कृतिक चेतना में आपना योगदान दिया है।

संदर्भ ग्रंथ

१) सर मोनियर विल्यम संस्कृत, इंग्लीश डिक्शनरी, पृष्ठ ११२०

२) हिन्दी विश्वकोश, खंण्ड –१२ पृ.१४

३) हिन्दी साहित्य कोश भाग पृ.सं. ८०१–८०२

४) सिंह रामधारी दिनकर –संस्कृति के चार अध्याय, भुमिका से

५) डॉ. राधाकृष्णन – स्वतंत्रता एवं संस्कृति, पृ.४३

६) द्विवेदी हजारी प्रसाद : अशोक के फुल, पृ.६४

७) सिंह जवाहरलाल –भगवती चरण वर्मा के उपन्यास और युग चेतना, पृ. २५३,२५४

८) पाण्डेय गणेश – समाजशास्त्र के सिध्दांत, पृ.सं.१२३

९) पाण्डेय गणेश – समाजशास्त्र के सिध्दांत, पृ.सं.१२३

१०) कोहली नरेन्द्र – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें पृ.सं.९९

११) कोहली नरेन्द्र – एक और लाल तिकोण पृ.सं.४४

१२) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध पृ.सं. १४३

१३) घोंघी लतिफ – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें पृ.सं.११५–११६

१४) कोहली नरेन्द्र – आधुनिक लडकी की पीडा पृ.सं.१४३

१५) सुरीवाला रोशनलाल – ये माँगनेवाले पृ.९०

१६) धर्मयुग, १७ जुलाई १९९७, पृ.१४

१७) कोहली नरेन्द्र – पाँच एब्सर्ड उपन्या पृ.सं.१४३

१८) राय अमृत – विजीट इंडिया, पृ.२०

१९) चतुर्वेदी गोपाल – खंभो का खेल, पृ.५९

२०) कला नन्दलाल, परसाई हरिशंकर और नागफनी की कहानी पृ.४०

२१) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध पृ.सं.१२३

२२) त्यागी रविन्द्रनाथ – भित्ती चित्र, पृ.४४

२३) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध पृ.सं.१२३

२४) जोशी शरद – यथासंभव, पृ.१९३

२५) पुणतांबेकर शंकर – विजीट यमराज की, पृ.१७१

२६) कोहली नरेन्द्र – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें पृ.सं.२१२

२७) कोहली नरेन्द्र – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, पृ.सं.२१२

२८) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध, पृ.सं.१२१

२९) कोहली नरेन्द्र – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, पृ.सं.९९

३०) कोहली नरेन्द्र – ''काटने की संस्कृति'' त्राहि–त्राहि, पृ.सं.९९

३१) तिवारी बालेन्दु शेखर – इक्सवी सदी में व्यंग्यकार, पृ.२४

३२) कोहली नरेन्द्र – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, पृ.सं.१४६

३३) त्यागी रविन्द्रनाथ – फुलोंवाला कँक्टस, पृ.५६

३४) कोहली नरेन्द्र – पाँच एब्सर्ड उपन्यास, पृ.सं.४

३५) जोशी शरद – मुद्रिका रहस्य, पृ.१३७

३६) सक्सेना के. पी. – नया गिरगिट, पृ.२१

३७) कोहली नरेन्द्र – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, पृ.सं.१११

३८) चतुर्वेदी बरसानेलाल – मुँच्छ पुराण, पृ.३९

३९) कोहली नरेन्द्र – समग्र व्यंग्य, पृ.सं.११४

४०) त्यागी रविन्द्रनाथ – अतिथि कक्ष, पृ.८७

४१) कोहली नरेन्द्र – आधुनिक लडकी की पीडा, पृ.सं.०९

४२) जोशी शरद – यथा संभव, पृ.१३७

४३) त्यागी रविन्द्रनाथ – अतिथि कक्ष, पृ.७८–७९

४४) गुप्त कमल – मैकाले का भूत, पृ.७४

४५) कोहली नरेन्द्र – प्रथम पृष्ठ का समाचार, पृ.सं.१०८

४६) कोहली नरेन्द्र – प्रथम पृष्ठ का समाचार, पृ.सं.१०९

४७) चतुर्वेदी बरसानेलाल –पत्रकारजी नमस्ते, पृ. १९४

४८) परसाई हरिशंकर – ठिठुरता हुआ गणतंत्र, पृ. ८७

४९) मजीठिया सुदर्शन – कुछ इधर कुछ उधर की, पृ.२२

५०) मजीठिया सुदर्शन – मुख्यमंत्री का डण्डा, पृ.२७–२८

५१) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध, पृ.सं.१४३

५२) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध, पृ.सं.१२०

५३) कोहली नरेन्द्र – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, पृ.सं.१०१

५४) कोहली नरेन्द्र – पवित्रता के रक्षक, पृ.सं.७१९

५५) कोहली नरेन्द्र – पवित्रता के रक्षक, पृ.सं.७२०

५६) परसाई हरिशंकर – पगण्डिंयो का जमाना, पृ.८७

५७) मजीठिया सुदर्शन – टेलिफोन की घण्टी से, पृ.२२

५८) परसाई हरिशंकर –मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, पृ.१५४

५९) त्यागी रविन्द्रनाथ – मलिनाथ की परम्परा, पृ.७९

६०) परसाई हरिशंकर – अपनी अपनी बिमारी, पृ.८७

६१) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध, पृ.सं.२३

६२) कोहली नरेन्द्र – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, पृ.सं.११७

६३) कोहली नरेन्द्र – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, पृ.सं.१०१

६४) कोहली नरेन्द्र – समग्र व्यंग्य एक, पृ.३४

६५) कोहली नरेन्द्र – समग्र व्यंग्य एक, पृ.१५९

६६) पुणतांबेकर शंकर – विजीट यमराज की, पृ.४९

६७) त्यागी रवीन्द्रनाथ – प्रतिनीधी रचनाएँ पृ.८१

६८) कोहली नरेन्द्र – गणतंत्र का गणित, पृ.३४

६९) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध, पृ.सं.३५

७०) चौधरी धनराज – गौतम बुध्द और लाल तिकोन, पृ.६२

७१) कोहली नरेन्द्र – एक और लाल तिकोन, पृ.सं.१०१

७२) परसाई हरिशंकर – और अन्त में, पृ.६८–६९

७३) कोहली नरेन्द्र – एक और लाल तिकोन, पृ.सं.३६

७४) द्विवेदी हजारी प्रसाद – विचार प्रवाह, पृ.१८३

७५) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध, पृ.सं.४६

७६) कोहली नरेन्द्र – जगाने का अपराध, पृ.सं.९८